सृजन और आलोचना का प्रमुख त्रैमासिक

कालपी में प्राचीन रंगशाला की ऐतिहासिक खोज

•

बुन्देली लोक संगीत

•

कृष्णप्रिया

•

'शिवू दा' का आल्हखण्ड

•

छत्रप्रकास के पाठ निर्धारण पर एक टिप्पणी

बुंदेलखण्ड साहित्य अकादमी प्रकाशन

एक प्रति : चार रुपये वार्षिक सहयोग : पन्द्रह रुपये

आषाढ़-श्रावण-भाद्रपद, संवत् २०३८ अंक २.

'मामुलिया' के प्रबंध-सम्पादक एवं कवि-कथाकार चौ० श्री किशोरी लाल अग्रवाल 'लल्ला' के साकेतवासी होने पर अकादमी परिवार की ओर से श्रद्धांजलि

मामुलिया

- सम्पादक : डॉ० नर्मदाप्रसाद गुप्त • सहसम्पादक : डॉ० वीरेन्द्र निर्झर
- सम्पादन सहयोग : डॉ० कृष्णकुमार हूँका, सुरेन्द्र शर्मा, आशाराम त्रिपाठी
- समाचार-सम्पादन : श्री वीरेन्द्र शर्मा कौशिक

शोधलेख

कहानियाँ

संस्मरण/स्मरण

कविताएँ

निवेदन : सहयोग

- 'मामुलिया' में प्रकाशनार्थ प्रेषित रचनाएँ फुलस्केप साइज के कागज पर एक तरफ सुलिखित या टंकित अवश्य हों। स्तरीय और उपयोगी रचनाओं की स्वीकृति-सूचना यथासमय स्वतः भेज दी जाएगी। रचनाओं के उदार सहयोग का आपसे अनुरोध है।
- बुंदेलखण्ड के प्रत्येक उदारमना नागरिक, पाठक एवं विद्वान साहित्यकार के पास चाहकर भी पहुँच सकना संभव नहीं है और आप यह जानते ही हैं कि बिना आर्थिक सहयोग के पत्रिका का प्रकाशन कठिन है। अतः बुंदेलखण्ड की संस्कृति, साहित्य और कला को प्रकाश में लाने के लिये कम से कम पत्रिका के वार्षिक शुल्क पन्द्रह रुपये मात्र का त्याग तो अनिवार्यतः अपेक्षित है। अन्य बंधुओं को भी पुनीत सहयोग हेतु प्रेरित करें।

सम्पर्क-सूत्र :

- सम्पादकीय : डा० नर्मदाप्रसाद गुप्त, शुक्लाना मुहाल, छतरपुर—४७१००१, म० प्र०
- व्यवस्थापकीय : बुंदेलखण्ड साहित्य अकादमी, शुक्लाना, छतरपुर—४७१००१, म० प्र०
- अर्थ-प्राप्ति : महेश चौरसिया, १८२, शुक्लाना, छतरपुर—४७१००१, म० प्र०

अपने मन मानिक के लानें सुगर जौहरी चानें

•

कालप्पदेव का टीला : टीला के देव

जुलाई में नागपुर के (बुंदेलखण्ड के नहीं), किन्तु पूरे देश में ख्यात विद्वान इतिहासकार डा० वा०वि० मिराशी ने कालपी के कालप्पदेव के टीला के उत्खनन का सवाल बुंदेलखण्ड साहित्य अकादमी के सामने रखा। शायद इस आशा के साथ कि उसका उत्खनन केवल बुंदेलखण्ड के लिये नहीं, वरन् सारे देश के लिये महत्वपूर्ण है, लेकिन इस कार्य का समारम्भ बुंदेलखण्ड करे। निश्चित ही उनकी (और समय की भी) अपेक्षा सर्वथा उचित है और जो उचित है, उसका समादर होना ही चाहिए। अकादमी तो उसके लिये उपकृत है ही, उपक्रम के लिये कटिबद्ध भी। पर इस समस्या के अगल-बगल दो सवाल और हैं—एक तो यह कि बुंदेलखण्ड में न जाने कितने टीले हैं, क्या यहाँ के विद्वान इतिहासकारों और पुरातत्वविदों का 'सोच' कभी करवट लेगा और सारे टीलों के देव जागेंगे और दूसरा यह कि क्या उन टीलों के किनारे बसे लोग उनकी कीमत समझेंगे। मुश्किल तो यह है कि हर 'टीला' पर एक 'देव' विराजमान है, जिससे 'निकलकर' वह 'बाहर' नहीं आना चाहता। सारे 'देव' जब एक साथ 'निकल' पड़ेंगे, तब यह क्षेत्र पुरानी 'सम्पदा' का खजाना हो जाएगा।

इतिहास की ऐतिहासिकता: ऐतिहासिकता का इतिहास

इतिहास की बात चल ही पड़ी है, तो क्यों न उन दो ऐतिहासिक इतिहास-गोष्ठियों की चर्चा का स्मरण करें, जो पिछले दिनों छतरपुर और महोबा में हुई। इतनी सरगर्मी और जोश के साथ कि लगता था मानो बुंदेलखण्ड के इतिहास का उद्धार हुआ समझो। या तो कुछ महत्वपूर्ण खोजों का पता चलेगा या कुछ अहम सवालों का समाधान मिलेगा। और नहीं तो, कम से कम इतिहास-देवता के दर्शन तो होंगे। दर्शन हुए, पर बिल्कुल मुगल बादशाह के-से, झरोखे से कुछ पलों के लिये। कोई बात नहीं, यह ऐतिहासिक अंदाज या

मुद्रा तो जरूरी है ही। कुछ विशेष किस्म के दर्शकों को भले ही संतोष न हुआ हो. लेकिन कुछ उनकी झलकमात्र से गदगद हो गये। उस पवित्र मंदिर में आने वाले भक्तों की शिकायत थी कि इतने दिनों बाद पट खुले, तो कम से कम उनके रूप-रंग का बखान होता। खैर, पट खुल गये, यह भी एक ऐतिहासिक कदम है और इतिहास की यह ऐतिहासिकता हमेशा याद रहेगी। प्रवचनों का अमृतपान तो और भी मूल्यवान उपलब्धि है। पं० गोरेलाल तिवारी और दिवान प्रतिपालसिंह जू के अप्रकाशित ग्रंथों के टुकड़ों को प्रकाशित करने की सार्थकता अलग है और इन गोष्ठियों के आनंद की बिल्कुल अलग। गोष्ठियों के महत्व को नकारने की बात नहीं है, बात है केवल सार्थकता की। सार्थक चर्चाओं का भी अपना इतिहास है और उस ऐतिहासिकता को ध्यान में रखना ही पड़ता है। इतना अवश्य है कि इतिहास-देवता उस 'अहसास' को (भक्त के लिये भक्ति का वरदान जैसा) आशीर्वाद के रूप में प्रदान करें।

फाग का उत्सवः उत्सव की फाग

'अहसास' तो हुआ फाग-महोत्सव की उस संगोष्ठी में, जो जगनिक शोध-संस्थान द्वारा महोबा में आयोजित की गयी थी। फाग काव्य के उद्‌भव, विकास और इतिहास की समस्या उस दिन पहली बार उठी और फाग के सबसे प्राचीन रूप का संकेत भी प्रथम बार किया गया। अक्सर ईसुरी की चौकड़ियाँ सामने रखकर इतिहास लिखने की कोशिश की जाती है, जबकि ईसुरी के बहुत पहले फाग अनेक रूपों में प्रचलित रही है। अतएव इस गोष्ठी की महत् उपलब्धि फाग काव्य की इतिहास-चेतना को जाग्रत करना था और विद्वानों ने चर्चा करते हुए जो टिप्पणियाँ प्रस्तुत कीं, वे उद्देश्य के और निकट पहुँचाने में सफल रहीं। यह अलग बात है कि कुछ लोगों में एक जबर्दस्त प्रतियोगी भावना उठी, पर उससे गोष्ठी का परिवेश और सार्थक बन सका। कुल मिलाकर फाग का यह उत्सव अपने में उपयोगी रहा। मन तो तब कचोटता है, जब उत्सव की फाग खेली जाती है। कुछ पूर्वनिश्चित निजी अर्थों को लेकर एक जमघट जोड़ना और भीड़-भाड़ तथा शोरगुल के बीच अपनी तस्वीर का पोस्टर खड़ा करना फाग खेलने जैसा एक विचित्र आनंद अवश्य देता है, पर उत्सव की मूल्यवान पूंजी की होली जलाकर।

प्रतियोगिताओं का दौर और दौर की प्रतियोगिता

इधर दो उत्सवों में प्रतियोगिताओं का दौर प्रारम्भ हुआ, पहले महोबा के फागमहोत्सव में फागदलों की प्रतियोगिता हुई और फिर वहीं पं० परमानन्द-समारोह में अल्हैतों या आल्हागायकों की। फागों का फड़ बहुत पुराना है और

अभी कुछ वर्षों पूर्व तक बुंदेलखंड में ख्यालों, सैरों, मंजों, फागों आदि की प्रतियोगिताएँ लोकसाहित्य का विशेष अंग बनी रहीं, जिनसे एक तरफ नये-नये लोककाव्य की रक्षा और प्रगति हुई तथा दूसरी तरफ लोककवि मैदान में आये। वस्तुतः फागों के फड़ों का पुनरुत्थान आवश्यक था और जगनिक शोध-संस्थान ने एक अच्छी पहल की है, जिससे लगता है कि अब पूरे क्षेत्र में इन फड़ों को एक नया रूप मिलेगा। अल्हैतों की प्रतियोगिता एक नवीन प्रयोग है, जिसे संभवतः पहली बार किया गया है। अल्हैतों में फड़बाजी नहीं थी और आल्हा-गायन लम्बे समय तक चलता है, इसलिये इसकी आयोजना में यथेष्ठ सतर्कता बरतने की आवश्यकता है। प्रतियोगिताओं का यह नया दौर एक नयी चेतना लायेगा, लेकिन साथ ही साथ कहीं एक दौर से दूसरे दौर की प्रतियोगिता शुरू न हो जाय, यह सावधानी रखना भी जरूरी है।

सम्मान की एक घोषणा और घोषणा का सम्मान

तुलसी-जयंती के उपलक्ष्य में आयोजित एक काव्य-गोष्ठी (पत्रकारों के अनुसार ऐतिहासिक काव्यगोष्ठी) में बुंदेलखण्ड साहित्य अकादमी ने प्रति वर्ष बुंदेलखण्ड के एक साहित्यकार के सम्मान की घोषणा की है, जिसका स्वागत सर्वत्र हुआ है। सम्मान और गोष्ठी के आयोजन का सारा भार श्री लक्ष्मणदास कुंजबिहारी सराफ अग्रवाल धर्मशाला ट्रस्ट, छतरपुर ने अपने सबल कंधों पर लिया है। प्रेरणा के स्तम्भ हैं—श्री कन्हैयालाल अग्रवाल, भूतपूर्व आयुक्त। अगर बुंदेलखण्ड में ऐसी उदार संस्थाएं और सज्जन आगे आएँ, तो इस क्षेत्र की संस्कृति, साहित्य और कला की प्रगति दूर नहीं। लेकिन दूसरी तरफ साहित्यकारों और कलाकारों को भी उन्मुक्त होकर कला-कर्म में जुटना चाहिये और घोषणा के सम्मान की सार्थकता सिद्ध करना चाहिये। यह कोई नैतिकता के तकाजे की बात नहीं, वरन् वास्तविकता से जूझने का आह्वान है।

बुंदेली परिषद : परिषद बुंदेली की

अक्सर उत्सवों या समारोहों के बीच कोई चर्चा छेड़ देता है या कभी-कभी एक फुसफुसाहट गूंजती है—एक बुंदेली परिषद बनी है झाँसी विश्वविद्यालय के अंतर्गत। उसमें बुंदेली के नामी-गरामी विद्वान हैं और योजनाओं का शानदार ताम झाम है। तुरंत एक रहस्यमय यवनिका-सी खिंच जाती है और हर श्रोता जिज्ञासु उत्सुकता से भर जाता है। आखिर क्या होता है उसमें, उसकी क्या योजनाएं है और अब तक क्या हुआ है? उन सब के बीच इन सवालों को उभरते देखा जाता है, तब कोई जानकार कह उठता है कि

'वेतवा-वाणी' जैसी पत्रिका उसकी मूल्यवान उपलब्धि है। इसमें कोई सन्देह नहीं। लेकिन तभी एक दूसरा श्रोता पूछ बैठता है कि यह बुंदेली परिषद है या परिषद बुंदेली की। इस प्रश्न को स्पष्ट करने के लिये तीसरी आवाज उठती है और उसे उत्तर मिलता है कि उसके दिमाग में अभी तक यह उलझन है कि यह परिषद बुंदेली भाषियों और विद्वानों की है अथवा बुंदेली लोकभाषा और साहित्य की। खैर, यह सवाल बेतुका कहकर टाला जा सकता है, लेकिन ऐसी समृद्ध संस्थाओं को कम से कम आत्म-विश्लेषण तो करना ही है। किसी को जवाब देने के लिये नहीं, वरन् खुद की और सारे बुंदेलखण्ड की प्रगति के लिये।

लल्ला चले गये : चले गये लल्ला

'मामुलिया' के प्रबंध सम्पादक श्री किशोरी लाल अग्रवाल 'लल्ला' हमें छोड़ कर चले गये। वे कवि और कथाकार ही नहीं थे, वरन् एक बढ़िया इंसान भी थे और उनकी कविताएं और कहानियां आज भी रखी हैं, इंसानियत अब तक याद आती रहती है। फिर मन में एक प्रश्नचिह्न-सा लग जाता है, कोई भीतर से पूछता है—चले गये लल्ला ? आज भी अकादमी के परिवार में एक कसक सी उठती है और हर आदमी एक दूसरे से जानना चाहता है कि क्या लल्ला चले गये। फिर इस भ्रान्ति और वास्तविकता के बीच उलझे 'लल्ला' के परिवार को कौन समझाये, कौन धीरज बंधाये। सिवा उस परमपिता भगवान के।

मामुलिया का स्वागत : स्वागत मामुलिया का

'मामुलिया' के प्रकाशन के बाद जैसे ही वह विद्वानों और रसिक पाठकों के सामने आई, उसका इतना स्वागत हुआ है कि उसे कहा नहीं जा सकता। बानगी इसी अंक के सात-आठ पृष्ठों में समेट ली गई है। ताज्जुब तो यह है कि लोगों ने खुद टोककर उसे अपनाने की आवाज दी है। 'मामुलिया' को गा-बजाकर प्रतिष्ठित करने के लिये अकादमी सभी की कृतज्ञ है। 'मामुलिया' आपकी ही है, आपकी बगिया के फूलों से सजी-सँवरी और आपके आँगन से गलियों-गलियों ठुमककर चलती हुई। आपही के गीत हैं, बोल हैं और आपको ही इसे निकालने का श्रेय है। आप अच्छी तरह जानते हैं कि 'मामुलिया' अकेले नहीं चलती, सबके साथ चलना उसका पुराना संस्कार है। फूल चाहे चम्पा-चमेली के हों, चाहे धतूरे के; चाहे बगिया के हों, चाहे जंगल के और चाहे गांव के खेतों के किसी कोने-अंतर में उगे, चाहे शहर के किसी राष्ट्रीय पार्क में दूब की शय्या पर पौढ़े, 'मामुलिया' पर सभी का हक है और वह सबकी है। 'मामुलिया' सबकी तरफ अपने अनेक पुष्प-नेत्र फैलाये सबका स्वागत करती है।

दूसरे अंक में कुछ विलम्ब हुआ है। कुछ ऐसी व्यवस्थाएँ हैं, जो अपने वश में नहीं हैं। प्रबंध सम्पादक जी का एक माह तक रोग-शय्या पर पड़े रहना और अचानक चले जाना, प्रेस की अपनी अनोखी अदाएँ और कुछ अनिवार्य-सी बाधाएँ। पाठकों से क्षमा-याचना के साथ केवल इतना निवेदन है—'मामुलिया को हम सवई निकार रये, कउँ फूलई न मिलत और कउँ सहेली नई जुरतीं, ईसें देर-सबेर उर रात-बिरात की पीड़ा सबई पैलां से विचार कें छिमा करत रैहें।' यह अंक आपके सामने है, परख-परखाव आपका है।

☐ सम्पादक

परख परखाव

चढ़ाव को चुलिया

•

[‘परख-परखाव’ स्तम्भ के अंतर्गत ‘मामुलिया’ के पाठकों के अपने विचार हैं। लम्बे पत्रों के संक्षिप्त अंश ही दे सके हैं। विद्वान पाठकों से आग्रह है कि वे इस अंक या इसकी किसी रचना पर अपनी सार्थक टिप्पणी संक्षेप में भेजने का कष्ट करें, जिससे परख के परखाव भी स्थिर हो सकें। यह ध्यान रखें कि अगले अंक से इस स्तम्भ को इतनी जगह न मिल सकेगी, इसलिए सटीक प्रतिक्रियाएं ही स्वीकार्य हैं। —सम्पादक]

साहित्य के लता-कुन्जन सें ऐसी सज-सजा कें आई है, लगत है कै कोऊ पाउनी आई है और है घरई की। मनों जा बात नौनी नें लगी कै उनकी आउती हर तीसरे महीना हुहै। अरे, उनें तौ हर महीना सज-सँवर कै आओ चइये। और तुमें तौ नर्मदा जू कौ परसाद मिलो है, इतनौ तौ करौ। तुमाये तौ ‘माटी छुएं सौनो होत’।

—डा० रामकुमार वर्मा, साकेत, इलाहाबाद।

भौतऊ नौंनी जा मामुलिया भौतऊ नौंनी रे।
लोकवार्ता आई खेलत आंख मिचौनी रे॥
भौतऊ नौंनी भौतऊ नौंनी भौतऊ नौंनी रे।
झूमकत झूमकत साम्हूं आई कातत पौंनी रे॥
पौनी के धागन धागन मों बोल रई बुंदेली।
मोखों भइया सबई बढ़ाओ नईं रइ जात पिछेली॥
मामुलिया के माद्धम सों अब मोखों आज उबारौ।
रच-रच कबित लेख-लिख कें करौ नाम उजयारौ॥
कामधेन आई रस भर लेव कर लेव दौंनी रे।
भौतऊ नौंनी जा मामुलिया भौतऊ नौंनी रे॥

—डा० श्यामसुन्दर बादल, राठ (हमीरपुर) उ० प्र०

मामुलिया की नैनी बौड़ी पाई। ईकी बास दिनदूनी रातचौगुनी बढ़तई जाय, गौवन-गौवन बंसी कैसी धुन सबई कौ मन मोहै।

तुमनें करी गुप्त जू साजी, जा मामुलिया साजी।
बरन बरन की बौड़ीं बिकसीं लगत डरइया साजी।
भरे ताल में फूला फूले रजउ पार पै लाजी।
‘इन्दु’ कोउ का करै बिलोरा जौ मन राजा राजी॥

—भारतेन्दु अरजरिया ‘इन्दु’, महोबा, उ० प्र०।

बुंदेली सजबे के लानें बनी चढ़ाये की चुलिया।
सुगढ़ बहू सी पाय बड़ाई खोर-खोर कुलिया-कुलिया।
हाँतन-हाँतन रई मोद नव भाँतन-भाँतन के उपजे,
मामुलिया-सी बनी-ठनी जा निकरी नौनी ‘मामुलिया’।

—सुरेन्द्र शर्मा ‘शिरीष’, छतरपुर, म० प्र०

बुंदेलखण्ड की प्रतिनिधि पत्रिका

बुंदेलखण्ड क्षेत्र की यह प्रतिनिधि त्रैमासिक है। पत्रिका में इस क्षेत्र की भाषा, साहित्य, इतिहास, कला और लोकवार्ता के संबंध में पठनीय सामग्री दी गई है। इस क्षेत्र का व्यापक भारतीय संस्कृति में जो अवदान है, उसका विविध लेखों और कविताओं के माध्यम से आकलन किया गया है। यह बड़े हर्ष की बात है कि आपके योग्य सम्पादन में इस पत्रिका का प्रारम्भ हुआ है। ऐसे प्रकाशन की बड़ी आवश्यकता थी।

—प्रो० कृष्णदत्त वाजपेयी, सागर, म० प्र०।

‘मामुलिया’ के प्रवेश-अंक से बुंदेलखण्ड की संस्कृति, साहित्य और कला की एकमात्र प्रतिनिधि पत्रिका की संभावनापूर्ण शुरूआत हुई है। आपके इस प्रयास के लिये हमारी हार्दिक बधाई।

—डा० धनंजय वर्मा, सचिव, म० प्र० आदिवासी लोककला परिषद भोपाल, म० प्र०

अभिनन्दनीय प्रयास

पत्रिका को देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। आपका प्रयत्न वास्तव में अभिनन्दनीय है। पत्रिका में लेखों का क्रम वैज्ञानिक ही नहीं, प्रेरणादायक भी है। अकादमी के द्वारा बुंदेलखण्ड के प्राचीन साहित्य का उद्धार तो हो ही सकता है, साथ ही इस क्षेत्र के उदीयमान लेखक और कवि भी प्रकाश में आ सकते हैं।

—हरबंश लाल शर्मा, कुलपति, बुंदेलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी, उ० प्र०।

बुंदेली लोक-भारती की यह विचार-गोष्ठी बुंदेलखण्ड साहित्य अकादमी, छतरपुर द्वारा प्रकाशित 'मामुलिया' पत्रिका का हार्दिक स्वागत करती है। प्रयास प्रशंसनीय है। सम्पादक-मण्डल से आग्रह है कि वह अगले अंक से बुंदेली साहित्य, संस्कृति, इतिहास, गद्य-पद्य की विविध विधाओं को पुष्ट करने वाली सामग्री को ही स्थान दे।

—बुंदेली लोक-भारती, जबलपुर का पारित प्रस्ताव

नयी सार्थकता

आज जब रचना का शहरीकरण तेजी से होता जा रहा है, तब 'मामुलिया' जैसी पत्रिका में एक नयी सार्थकता है—भारत के ग्राम-अंचल का प्रतिनिधित्व करना। मुझे आशा है कि आप लोग आज के सामाजिक यथार्थ को ध्यान में रखते हुए यह दायित्व निभाने का प्रयत्न करेंगे।

—डा० प्रेमशंकर, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सागर विश्वविद्यालय।

बुंदेली की नवनीत

'मामुलिया' कल रात में पूरी पढ़ गया। मैं दावे के साथ कहता हूँ कि वह बुंदेली की 'नवनीत' है। सम्पादकीय, उराहनो, मौर्य कालीन बुंदेलखण्ड, दतिया राज्याश्रित हिन्दू इतिहासकार, बुंदेलखण्ड का सीमांकन, मेघप्रिया, कहावतों मे चित्रात्मकता, पाठ-निर्धारण, दिन ललित बसंती आन लगे, ईसुरी एक पुनर्मूल्यांकन, मस्तानी, होरी कौ रंग आदि रचनाएं प्रथम स्तर की हैं, जिनकी प्रशंसा मैं ही नहीं, वरन् हर ईमानदार पाठक करेगा। लेखकों के पते लेख की समाप्ति पर दे दिये जाएं, तो उत्तम रहेगा।

—डा० कृष्णकुमार हूँका, जबलपुर, म० प्र०

एक बड़े अभाव की पूर्ति

'मामुलिया' बुंदेली लोकसाहित्य की प्रगति के लिए एक उत्कृष्ट साधना है। पत्रिका का प्रथम अंक पढ़कर मुझे पूरा विश्वास हो गया है कि पत्रिका मधुकर और लोकवार्ता दोनों के अभाव की पूर्ति करेगी।

—डा श्यामसुन्दर बादल, राठ, उ० प्र०

स्तरीय और संग्रहणीय

क्षेत्रीय भाषा, संगीत एवं संस्कृति की सुरक्षा के लिए 'मामुलिया' जैसी पत्रिका प्रत्येक क्षेत्र में आवश्यक है। 'मामुलिया' का यह अंक आद्योपांत बुंदेलखण्ड की सौंधी सुगंध से सुरभित है। सामग्री रुचिकर होने के साथ ही इतनी स्तरीय भी है, जो सामान्य जन के लिये ज्ञानवर्द्धक है शोधछात्रों के लिये उपादेय भी। यदि कम से कम दो पारम्परिक लोकगीत स्वरलिपि सहित प्रत्येक अंक में देते रहेंगे, तो बुंदेली लोकसंगीत को भी संरक्षण मिलेगा।

—प्यारेलाल श्रीमाल 'सरस पंडित', उज्जैन।

'मामुलिया' का प्रवेशांक मिला। एकदम मौलिक और संग्रहणीय। स्तर हिन्दी की किसी भी पत्रिका से कम नहीं। इच्छा हुई कि एक बार उठाऊँ और समाप्त करके ही छोड़ूं, पर सामग्री के आधिक्य ने ऐसा नहीं करने दिया। एक रिक्तता पूरी करने के लिये बधाई। इससे हिन्दी जगत में बुंदेलखण्ड को परिचित और प्रतिष्ठित कराना सहज हो जायेगा।

—अयोध्याप्रसाद गुप्त 'कुमुद' निदेशक, व्यक्तित्व विकास, भारतीय जेसीज, उरई।

रेखाएं और कोण

'मामुलिया' का प्रथम अंक मिला, उसके लिए मैं आपका बहुत कृतज्ञ हूँ। ८८वें वर्ष में लिखना-पढ़ना कठिन हो गया है। किसी से पढ़वाकर पाठ्यवस्तु सुन लेता हूँ और चिट्ठी डिक्टेट कर देता हूँ। श्री वीरेन्द्र शर्मा 'कौशिक' का लेख मैंने स्वयं ही देख लिया है, वह मुझे बहुत पसंद भी आया है। मेरा यह निश्चित मत है कि बुंदेलखण्डी में ब्रजभाषा से भी अधिक मिठास है। उसकी सहज स्वाभाविकता शायद मुस्लिम प्रभाव से दूर रहने से ही कायम रह सकी।

—बनारसीदास चतुर्वेदी, फीरोजाबाद।

अरे, आपने तो चौंका दिया। 'मामुलिया' का हार्दिक स्वागत करता हूँ। श्री दुर्गाचरण शुक्ल के अत्यंत रोचक एवं चित्ताकर्षक लेख के लिये उन्हें बधाई देना चाहता हूँ। अरबी में अल् एक प्रत्यय है, जो शब्दों के पीछे आकर उन पर जोर देता है। कृत्तिका के तारा स्तबक का नाम सुरैया है। इतनी दूर कि प्रकाश दो हजार वर्षों में पृथ्वी पर आ पाता है। डा० भगवानदास गुप्त के लेख ने बहुत उत्सुकता पैदा कर दी।

—कृष्णानंद गुप्त, अध्यक्ष, बुन्देली परिषद्, गरौठा, उ० प्र०

आपका प्रयत्न सर्वथा सराहनीय है। 'बुन्देलखण्ड का सीमांकन' लेख बड़ा खोजपूर्ण है। अन्य लेखों में 'मौर्यकालीन बुन्देलखण्ड', 'बुन्देली पहेलियों में गुम्फित त्रेतायुगीन धार्मिक कथाएँ' तथा 'ईसुरी : एक पुनर्मूल्यांक' एवं 'कवि जगतनंद और उपखाने सहित दशम स्कंध चरित्र' लेख पसंद आए। मेरा सुझाव है कि अधिक लेख बुन्देली में होने चाहिए। इस अंक में भी कुछ लेख बुन्देली में लिखे गए हैं, जोकि बहुत अच्छे लगे।

—ब्योहार राजेन्द्रसिंह, जबलपुर।

'मामुलिया' के शीर्ष-चयन की प्रशंसा की जाय या उसे सजाने-सँवारने में किये जाने वाले श्रम की। पत्रिका के वर्तमान वैविध्य में निस्संदेह उसके भावी विकास के बीज निहित हैं।

—डा० रामेश्वरप्रसाद अग्रवाल, के० एम० मुंशी विद्यापीठ, आगरा।

किसी भी साहित्य के उत्थान में ऐसी ही पत्रिका की आवश्यकता है—आपने 'मामुलिया' के द्वारा एक आदर्श की स्थापना की है।

—प्रो० चन्द्रभूषण मिश्र, प्रधान सम्पादक, साहित्यारोहण, पटना।

आपका नयी शैली में प्रभावशाली सम्पादकीय वक्तव्य बहुत ही अच्छा लगा। आपके द्वारा शोधपूर्ण लेखों, कहानियों और कविताओं का चयन प्रशंसनीय है। बुन्देली क्षेत्र में ऐसी पत्रिका की नितांत आवश्यकता थी, जो आपने पूर्ण की है। मुझे विश्वास है कि 'मामुलिया' बुन्देली भाषा और उसके समस्त परिवेश को उजागर कर सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड को साहित्यिक एवं सांस्कृतिक चेतना का दर्पण बनेगी।

—माधव शुक्ल 'मनोज', मनोनीत सदस्य, आदिवासी लोककला परिषद्, सागर।

पहला अंक अपनी रीति-नीति अपनी पूरी गरिमा के साथ। सामग्री स्थायी, ठोस, चिन्तन-मनन से ओतप्रोत। सम्पादकीय बिल्कुल अनूठे और अछूते शीर्षकों के साथ। बुन्देली मनीषा, प्रतिभा और बुद्धि के सही उपयोग का माध्यम। 'जौ घर सौत-सौत के मारें' वाली आपकी टिप्पणी से हम सहमत हैं। बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय की अपनी बुन्देली परिषद् एक पत्रिका निकालती है, वह भी त्रैमासिक है—'वेतवा-वाणी'। मैं स्वयं उसके सम्पादक-मण्डल में हूँ, पर 'मामुलिया' देखकर मुझे ईर्ष्या-सी हुई। पत्रिका का नाम, कलेवर, सामग्री जो चाहिए, वह सब स्तुत्य है। देखकर प्रसन्नता हुई—'ज्यों बड़री अँखियान लख, आँखन कों सुख होत।'

—डा० गनेशीलाल बुधौलिया, राठ, हमीरपुर, उ० प्र०

रुचिपूर्वक पूरा अंक पढ़ गया। इस पत्रिका के माध्यम से बुन्देलखण्ड के इतिहास और संस्कृति की विलुप्त कड़ियाँ ढूंढ़ने और जोड़ने में बड़ी सहायता मिलेगी।

—डा० कन्हैयालाल अग्रवाल, प्राध्यापक, वाणिज्य महाविद्यालय, सतना।

आकर्षक छपाई और उत्कृष्ट लेखों का चयन सुखद रहा। पाठ-निर्धारण, शब्द बोलते हैं और उगती कोंपल स्तम्भ विशेष रूप से आकर्षक हैं। बुन्देली क्षेत्र का नक्शा कुछ अस्पष्ट-सा लगता है। बुन्देलखण्ड के लोकजीवन से जुड़े पुरातत्व से संबद्ध अथवा कलाकारों की तूलिका से निर्मित चित्रों और रेखा-चित्रों को भी इस पत्रिका में स्थान दे सकें, तो नया काम होगा।

—प्रो० प्रहलाद तिवारी, इंदौर।

'मामुलिया' जन-जन के हाथों में जाकर हृदय का हार बन जाएगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

—पं० कृष्णदास 'कृष्णकवि', पन्ना

'मामुलिया' पढ़ी, काफी अच्छी लगी। विशेषकर शोधनिबंध एवं ललित निबंध मन पर छा गये। हृदय स्पर्शी कहानियाँ भीतर तक छू गईं। पत्रिका में भाषा—लोकभाषा को ऊपर उठाने का जो प्रयास किया गया है, उसमें पूरी सफलता आपको मिली है। संस्मरण, लघुकथाएं, वार्ता, शब्द बोलते हैं, पाठ-निर्धारण, अनूदित, अज्ञात कृति आदि ज्ञानवर्द्धक हैं।

—दिनेश अग्रवाल, दैनिक समय, शहडोल।

कवर पेज काफी अच्छा लगा, 'आलोचना' जैसा। शोध निबंध सचमुच शोध की नयी दिशाएँ इंगित करने वाले हैं। ललित-निबंध अच्छा लगा। कहानियों के चयन पर संपादक का दृष्टिकोण कुछ अस्पष्ट रहा। कहानी को सांप्रतिक मुख्यधारा से पीछे ले जाना…फिर 'होरी कौ रंग' और 'मामुलिया'; बुंदेली बोली का २०वीं सदी का सोद्देश्य, यत्नसाध्य गद्य से अधिक कुछ नहीं हो सकता। काव्य-विधा की अपनी प्रासंगिकता अद्यावधि असंदिग्ध है। 'लघु-कथा' स्तम्भ में इस बार लघुकथा' नहीं थी। अथाई की बातें स्तम्भ से बुंदेली गद्य का परिचय ठीक रहेगा किन्तु भाषा की सहजता और सोच की प्रामाणिकता ध्यातव्य है। 'अज्ञात कृति' स्तम्भ बहुत उपयोगी है। शोध संबंधी तक-रीबन सभी लेख स्तरीय हैं और संपादक का भी दृष्टिकोण यहाँ बड़ा स्पष्ट है। संपादक की रुचि का केन्द्र यहीं कहीं मालूम पड़ता है। डा० वीरेन्द्र 'निर्झर' का कथ्य से श्रव्य तक समझ में नहीं आ सका।

—ओमप्रकाश बबेले, मऊरानीपुर।

'शब्द बोलते हैं' स्तम्भ में 'लबुदिया' का अर्थ छड़ी तो है, लेकिन हर आकृति अपने आप में कोई न कोई विशेषता रखती है, अतः उसकी विशेषता का भी शब्द के अर्थ के साथ स्पष्टीकरण अति आवश्यक है। मेरी समझ में 'लबुदिया' का अर्थ लफलफाती अर्थात् लचीली छड़ी है। 'लौलइयां' शब्द बहुवचन है, जबकि इस स्तम्भ में एकवचन का प्रयोग उचित रहेगा। मुख पृष्ठ पर किसी सांस्कृतिक चित्र को स्थान दिया जाना चाहिए। प्रत्येक अंक में बुंदेलखंड के किसी एक लेखक का चित्र, परिचय एवं उसकी रचनाओं की समीक्षा रहना चाहिए। समस्यापूर्ति का स्तंभ जरूरी है। अतुकांत और नई

कविताओं को स्थान नहीं दिया जाना चाहिए। इन सुझावों के साथ-साथ 'मामुलिया' के प्रति मेरी हृदय की बात—

दाने परन लगे फलिया में, बुंदेली बगिया में।
चुन-चुन पुष्प शब्द के खोंसे कलाकार जरिया में।
सिमटी सकल धरोहर वैदिक साहित्यिक डलिया में।
जा संस्कृति बुन्देलखंड की देखी 'मामुलिया' में॥

— मोतीलाल बिलैया, मऊरानीपुर।

पहले तो मुझे लगा कि पंद्रह रुपये गये, जैसा कि आमतौर पर होता रहता है, किन्तु 'मामुलिया' की सामग्री पढ़कर लगा कि पहली ही बार सब चुकता हो गये, अब आगे के अंक बिना शुल्क के रूप में प्राप्त होते रहेंगे। 'मामुलिया' ने मुझ जैसे नीरस व्यक्ति को, जो साहित्य से कोसों दूर है, प्रेरणा दी और सेवा में दो कविताएँ भेज रहा हूँ।

—कुँवर कृष्णप्रताप सिंह, छतरपुर।

बुन्देलखंड से इतनी अच्छी व स्तरीय पत्रिका के प्रकाशन के लिये आप निश्चित ही बधाई के पात्र हैं। सभी रचनाएँ पत्रिका के स्तर के अनुकूल हैं। संस्मरण स्तम्भ के अन्तर्गत श्री वीरेन्द्र शर्मा 'कौशिक' के लेख में डा० रामकुमार वर्मा के लिये 'मिलो तौ तनकई देर खों हतो' का प्रयोग अच्छा मालूम नहीं देता, बल्कि अशोभनीय सा लगता है। आखिर ऐसा भी तो लिखा जा सकता था :

'मिले तौ तनकई देर खाँ हते'।

—अशोककुमार रावत, छतरपुर।

'मामुलिया' जैसी पत्रिका प्रकाशित करने वाली 'बुन्देलखंड साहित्य अकादमी' की शाखाएँ सम्पूर्ण बुन्देलखंड में होनी चाहिए।

—वैद्य हरिदास सक्सेना, चरखारी।

एक प्रश्न : एक दृष्टिपात

निस्संदेह 'मामुलिया' बुन्देलखंड के लिए एक संग्रह करने योग्य पत्रिका सिद्ध होगी। मुद्रण से लेकर उसके सम्पादन तक सभी कुछ प्रशंसनीय है। फिर भी कुछ बातें खटकने वाली अवश्य हैं। डा० कन्हैयालाल वर्मा 'विन्दु' के निबंध 'मामुलिया' की भाषा ग्रामत्व दोष-युक्त है, जिसे हम साहित्यिक स्तर पर भाषा रूप में स्वीकार नहीं कर सकते। 'ईसुरी : एक पुनर्मूल्यांकन' के लेखक डा० नाथूराम चौरसिया से विनम्र प्रश्न पूछना चाहता हूँ। डॉ० चौरासिया ने ईसुरी को मानव-धरातल से बहुत ऊपर उठाकर पैगम्बर बना दिया है, जिससे वे अपनी श्रद्धाभक्ति के कारण ईसुरी जैसे रसज्ञ कवि-मन का सही मूल्यांकन करने में पक्षपात कर गए हैं। रसज्ञ कवि की 'रजऊ' को लेखक ने जानबूझ कर अनदेखा किया है। उन्होंने ईसुरी को धौर्रा में नीम के पेड़ से लटका कर पिटाई की घटना के साथ जो रुकमिन द्वारा बहुमूल्य जेवरों के डिब्बा चुरा लेने का क्षेपक जोड़ा हैं, वह मेरे गले नहीं उतरा। क्योंकि 'रुकमन डवा काये न रानो, भेजो जेहलखानों' फाग में नीम से लटकाकर पिटाई का वर्णन नहीं है। प्रश्न है कि क्या ईसुरी को जेल-यात्रा भी करना पड़ी थी, जो 'भेजो जेहलखानो' में संकेतित है। ईसुरी की एक फाग और मिलती है—

भई जौ दसा लगन के मारें, रजऊ तुमाये द्वारें।
जिन तन घलीं न फूलन छरियाँ उभईं फिरें तलवारें।
हम तौ टँगे नीम की डारन, रजुआ करें बहारें।
ठाँड़ीं हतीं टिकी चौखट सें अब भईं ओट किवारें।
का कँय यार अकेले 'ईसुर' सबरोइ गाँव उतारें॥

इस फाग में रुकमिन द्वारा जेवर-चोरी का वर्णन नहीं है। 'रजऊ' और 'रजुआ' दो शब्दों का प्रयोग हुआ है। प्रश्न उठता है कि वह कौन था, जो किवाड़ों की ओट था। डा० बादल के अनुसार यदि ईसुरी की धर्मपत्नी राजा बेटी ही 'रजऊ' है, तो उसके द्वार पर ईसुरी की यह दशा कैसे और क्यों संभव है। मेरी राय में बुन्देली साहित्य-जगत को 'रजऊ' का ही ऋणी होना चाहिए, जिसकी प्रेरणा का प्रतिफल कविश्रेष्ठ ईसुरी हैं। अतः रजऊ विषयक बातों पर परदा डालकर हम ईसुरी के साथ न्याय नहीं कर सकेंगे।

—गुणसागर सत्यार्थी, कुण्डेश्वर, टीकमगढ़।

'मामुलिया' पत्रिका के प्रवेशांक को देखने से ऐसा प्रतीत हुआ मानो सुधी जनों का कोई स्वप्न साकार हो उठा हो। 'मामुलिया' का नामकरण ही अपने आप में सार्थक एवं आकर्षक है तथा बुन्देलखंड की संस्कृति का प्रतीक ग्रहण किये हुए है। पत्रिका के कलेवर में जिस प्रकार के मणि-मुक्तादि एवं पुखराज बिखेरे गये हैं, वे सब एक कुशल सम्पादक की दूरदर्शिता एवं विद्वत्ता के परिचायक जान पड़ते हैं। 'मामुलिया' में अंकित सामग्री पठनीय एवं शोधपरक है। इससे एक ओर जहाँ लोक-धारा के लोगों को आवश्यक सामग्री प्राप्त हो सकी है, वहाँ शिष्ट-धारा के सुधी जनों को भी पर्याप्त सामग्री उपलब्ध हो सकी है।

गीत, लेख एवं कहानियों का चयन भी उच्चकोटि का एवं रुचि के अनुकूल है। प्रिंटिंग भी बुरी नहीं कही जा सकती। अशुद्धियों में शनैः शनैः सुधार हो सकेगा। वैसे सीमित साधनों में किया गया प्रयास सराहनीय है। गागर में सागर भरने का प्रयत्न श्लाघनीय है।

मामुलिया में शोध निबंध, ललित निबंध, संस्मरण, लघुकथाएँ, वार्ता

आदि के स्तम्भ अपने आप में तो पूर्ण हैं, परन्तु लोक-भित्ति एवं अनुष्ठान से संबंधित चित्र, जो लोक-धारा के कलात्मक पहलू हैं, उनका होना भी आवश्यक है। मुखपृष्ठ पर अंकित विषय-सूची अवश्य आधुनिक शैली का पर्याय कही जा सकती है, परन्तु यदि उसके स्थान पर लोककला का रेखांकन अंकित किया जावे, तो अधिक आकर्षक एवं सार्थक होगा।

सम्प्रति 'ममुलिया' का प्रकाशन अपने आप में एक ऐतिहासिक घटना है। इसके प्रकाशन से एक दिन अवश्य बुन्देली 'बोली' का स्वरूप छोड़कर 'भाषा' का रूप धारण करने में समर्थ हो सकेगी, इसमें सन्देह नहीं।

—डॉ० रामदयाल कोष्टा 'श्रीकांत',
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, दा० ना० जैन महाविद्यालय, जबलपुर।

अज्ञात कृति

आल्ह मनउवा

शिवदयाल 'शिवू दा' कमरिया

•

[आल्हखण्ड की लिखित परम्परा के ख्यात कवि, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के एक संस्मरण में प्रशंसित। पिताश्री पारीछत कमरिया और माता अमानबाई के लाड़ले सुपुत्र एवं चिरगाँव से कुछ ही दूर के गाँव पुंछी करगवाँ के निवासी। शिक्षा साधारण पर अभ्यास से संगीत और काव्य-शास्त्र का ज्ञान। पहले 'पजन' उपनाम से लोकगीत, मंजों और फागों की रचना, फिर 'आल्हा' जैसे बुन्देली महाकाव्य के द्वारा जनकवि के रूप में विख्यात। 'आल्हा' के प्रभाव के संबंध में एक प्रसंग लोकप्रसिद्ध है कि एक बार जब उनके पुत्र हत्या के अपराध में बंदी बना लिये गए, तब शिवू दा ने स्वयं अपनी रचना टीकमगढ़नरेश महाराजा महेन्द्र प्रतापसिंह जू देव (१८७४-१९०६ ई०) को सुनाई थी और अपने पुत्र को मुक्त करा लिया था। इससे स्पष्ट है कि कवि १९वीं शती के अंतिम चरण में 'आल्हा' की रचना कर चुका था। प्रसाद, माधुर्य और ओज के अनोखे सामंजस्य के लिये बुन्देली की यह कृति स्मरणीय है। संकलित अंश डा० कन्हैयालाल वर्मा 'बिन्दु' के सौजन्य से उपलब्ध हुआ है, जिसे सम्पादित कर यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है। विद्वानों से आग्रह है कि वे अज्ञात कृति के अंश प्रकाशनार्थ भेजने का कष्ट करें। —सम्पादक]

हरसिंग जोधा कनवज गओ उर जहाँ आल रनधीर।
मुजरा करकें पाती दई उर जा कही महोवे भीर॥
सुनत बनाफर झर्रा गओ उर तिरछे करकें नैन।
हरसिंग तरफ हेर कें बोलो तुरत बनाफर बैन॥
पहुनई करवे खों आये हो हरसिंग करो करत की आय।
लुवावे बुलापे कों चँदेल सें हमसें कछू परोजन नाँय॥

देस निकारो दओ चँदेल नें उर कुटुम सहित परबार,
कमी करा दई कागद सें उर कड़वा दये राज सें बार ॥

खोदन खोदन मोरि बसई फिरै उर गलिन गलिन असवार ।
रोम न कसको परमाले को मोय भर दुपरै दये निकार ॥

तीन दिना नों जबै किरत रये मोरी नेक न बूझी बात ।
पानी उठाग्रो कीरत को अब का नगर महोबे जात ॥

जेठ मास के भर दुपरे ते उर संगै हती रनवास ।
खबर न भूलो वा दिन की बारो ईंदुल मरो पियास ॥

ब्याई बमुरिया टिमरों (?) की जाँ रनवासन मारें घाम ।
आबै जावै कौ चँदेल सें हरसिंग कौन हमारो काम ॥

ग्यान मान सें बिगरत है उर मंत्री बिन बिगरै राज ।
जती कुसंगत सें बिगरत है बिगरै सुरापान सें लाज ॥

दाता बिगारे रे सूमन नें उर घटकरनी बिगारे नूर ।
सबा बिगारी कूरन नें उर कायर नें बिगारे सूर ॥

दूद बिगारे बछला नें उर मछली नें बिगारे नीर ।
पुष्प बिगारे भौंरा नें उर प्रमदा नें बिगारे फकीर ॥

गाँव बिगारे डंडी नें उर काई नें बिगारे ताल ।
माहिल भूपत की चुगली सें राजा बिगर गओ परमाल ॥

पिरथीराज से रारी हैं उर करो जुद्द कौ ठाट ।
सूर विसा लेव लरबे खों ल्या ल्या कर लाहौरो हाट ॥

मेला बटेसुर कौ जाहिर है जाँ भौतेरे सूर बिकाँय ।
चतुर पारखी खों पठवा देव सो लै आबै सूर बिसाय ॥

दमरी-दमरी के दो-दो मिलें उर पैसा के सोरा बिकाँय ।
चतुर पारखी माहिल है इक दो रूँगन में मिल जाँय ॥

कारो कसौ न मैं कम्मर सें न कनवज सें करों पयान ।
गमन महोवे करहों ना हमकों गुरु गोरख की आन ॥

लाख दुहाई जस्सराज की उर देवा कौ दूद हराम ।
चंदेले ढिंग जैहों ना जानै तुलसो सालिगराम ॥

सुनकें वानी अल्लन की हरसिंग बोलो बचन उचार ।
भली विचारी दादा आलदेव हमकों छोड़ दओ मजधार ॥

दैकें नगाड़े गढ़ कनवज में और छोड़ धरे हथियार ।
चंदेलन की रियासत कौ दाना मोरे सिर पै भार ॥

मौजें करत रओ कनवज में खाओ दूद उर भात ।
पान बिदा कौन मिल जावै मैं अब लौट महोवे जात ॥

तीन ऊजरों करें परमाल कौ उर खरगन खेल दिखाय ।
समर सांगरी सें निरभय करें पाछें रियासत रय चय जाय ॥

जीवन जाको जा सिसार में और जगत सराहत जाय ।
लाज सरग जिनखों नईं ते नर जियत मरें सम आँय ॥

वदौ पलैया मोरौ छूटै ना उर न करों अन्न-जल पान ।
नगर कनवजा बिलमौ ना मोय वच्छराज पिता की आन ॥

अब उठ मिल लेव दादा आलदेव उर निगा करें रओ साफ ।
जियत रये तौ फिर मिलवूँ नईं सुरलोक में हुयै मिलाप ॥

हरसिंह ठाँड़ो मिलबे खाँ अल्लन उठो मिलो ना जाय ।
घोका बिचारी मन में करै अल्लन इक आबै इक जाय ॥
टपटप अँसुवा टपकन लगे और रओ धरन तन हेर ।
खाई खोद कें दुपचै परो भई गत साँप छछूँदर केर ॥

सुन सुन बानी हरसिंग की दिवला भरो डबरियन नीर ।
लइयाँ पइयाँ सिजरा सें उर जब आईं आल के तीर ॥

दै परकरमा हरसींग नें और चरनन सीस नबाय ।
बाँय पकर कें हरसींग की दिवला लीनो कंठ लगाय ॥

कहत दिवलदे गरुये आल सें बेटा बचन करो परवान ।
टटुवा चारक हते परमाल के टूटो फूटो हतो समान ॥

बूढ़ी हथिनिया अँदरू हती जामें हती टाट की झूल ।
पाँच गमाँ के ठाकुर हते बा सुद गई भूप खों भूल ॥
नदी नर्बदा कौ करको धरें उर जमुना की धरें कगार ।
राज करा दये चंदेल खों बेटा जानन जग-सिसार ॥

जीकी करनी जीके संगै अपनी करनी अपने हाँत ।
इन्द थाप कें चंदेल खों बेटा कैसो कनारो खात ॥

जा दिन बनाफर जनमन लये उर उल्लन आई दूब ।
नाचन आई मलनादेव उर परमाल दान दये खूब ॥

•

कालपी में प्राचीन रंगशाला की ऐतिहासिक खोज
कालप्रियनाथ के परिचय पर पुनर्विचार

डॉ० वा० वि० मिराशी, नागपुर
अनु० : डॉ० आत्माराम पाठक

[कालपी में आज भी कालप्पदेव टीले के नाम से प्रसिद्ध टीला है, जो कालप्रियनाथ के मंदिर का स्थल प्रतीत होता है। कालप्रियनाथ (सूर्य) का यह मंदिर प्राचीन काल में उतना ही प्रसिद्ध था जितना कि आजकल कोणार्क और उसे उतना ही भव्य होना चाहिए जितना कि कोणार्क का मंदिर। अतएव यह बड़ी बात होगी, यदि उस टीले का उत्खनन हो जाय और कालपी का यह प्राचीन मंदिर प्रकाश में आ जाय। बुंदेलखण्ड साहित्य अकादमी इस प्रश्न को उठावे और इस महत्वपूर्ण कार्य को सम्पन्न करने में अथक प्रयास करे।—डा० वा० वि० मिराशी के १४-७-८१ के पत्र से उद्धृत।

अकादमी इस लेख के प्रकाशन के साथ ही इस प्रश्न को बुंदेलखण्ड के पुरातत्वविदों, विद्वानों और सहृदय पाठकों के सामने रखती हुई आह्वान करती है कि वे अपने कीमती सुझाव एवं योगदान द्वारा अकादमी को सहयोग प्रदान करने की कृपा करें। साथ ही उत्तर प्रदेशीय एवं केन्द्रीय शासन और पुरातत्व विभागों से भी अकादमी अपेक्षा करती है कि इस टीले के उत्खनन कार्य को प्राथमिकता प्रदान कर इस ऐतिहासिक सम्पदा को यथाशीघ्र प्रकाश में लाने की व्यवस्था करें।—सम्पादक]

महाकवि भवभूति के सभी तीनों नाटकों की प्रस्तावना से ज्ञात होता है कि उनका अभिनय भगवान् कालप्रियनाथ के मेले के अवसर पर किया गया था। उदाहरणार्थ उनके प्रथम नाटक 'महावीर चरित' की प्रस्तावना में सूत्रधार कहता है कि—भगवतः कालप्रियनाथस्य यात्रायामार्यमिश्राः समादिशन्ति। (भगवान् कालप्रियनाथ के मेले में एकत्रित सम्मानित जनों ने मुझे ऐसा आदेश दिया है····) उनके दूसरे नाटक 'मालती माधव' की प्रस्तावना में इस नाटक के प्रथम अभिनय से सम्बन्धित विवरण इस प्रकार है—मारिष, सुविहितानि

रङ्गमङ्गलानि संनिपातितश्च भगवतः कालप्रियनाथस्य यात्रा प्रसङ्ग न नाना-दिगन्तवास्तव्यो महाजन समाजः। आदिष्टश्चास्मि विद्वज्जन परिषदा यथा केनचिदपूर्वप्रकरणेन वयं विनोदयितव्या इति। (मारिष, रङ्गमञ्च की माङ्गलिक क्रिया विधिवत् सम्पन्न हो चुकी है। भगवान् कालप्रियनाथ के मेले के सन्दर्भ में अनेक दिशाओं से सज्जन समाज यहाँ एकत्रित हुआ है। विद्वत्समाज द्वारा मुझे आज्ञा दी गई है कि किसी नवीन नाटक के अभिनय से उनका मनः प्रसादन किया जाय) भवभूति के तीसरे नाटक 'उत्तर रामचरित' की प्रस्तावना से भी यह स्पष्ट होता है कि इसका प्रथम अभिनय कालप्रियनाथ के मेले के अवसर पर किया गया था। सूत्रधार कहता है कि—अद्य खलु भगवतः कालप्रियनाथ यात्रायामार्यमिश्रान् विज्ञापयामि। (मैं आज यहाँ भगवान् कालप्रियनाथ के मेले के अवसर पर उपस्थित सम्मान्य जनों से निवेदन करता हूँ कि)

इससे यह विदित होता है कि भवभूति के नाटकों को आरम्भ में किसी राजदरबार में मान्यता (प्रवेश) नहीं प्राप्त हो सकी थी, किन्तु उन्हें जनप्रिय आधार प्राप्त हो चुका था और वे भगवान् काल प्रियनाथ के मेले के अवसर पर खेले जाते थे। 'मालती माधव' के विवरण से यह ज्ञात होता है कि कालप्रियनाथ का मन्दिर अत्यन्त प्रसिद्ध था और देश के विभिन्न भागों से लोग आकृष्ट होकर वहाँ आते थे। प्रस्तुत निबन्ध में इस मन्दिर की (भौगोलिक) स्थिति निश्चित करने का प्रयास किया गया है।

अब हम पहले देखें कि संस्कृत के टीकाकारों ने इस विषय पर क्या मत प्रकट किये हैं। भवभूति के नाटकों की पांडुलिपियों में इस देवता के दो रूप-'कालप्रियनाथ' तथा 'कालप्रियनाथ' प्राप्त होते हैं। एक टीकाकार (वीर राघव) के अनुसार 'कालप्रियनाथ' शब्द की व्युत्पत्ति में भी शब्द का मूल स्वरूप 'कालप्रियनाथ' है, जो कालान्तर में परिवर्तित होकर 'कालप्रियनाथ' बन गया। उन्होंने पहले तो कालप्रियनाथ का पाठ कालप्रियनाथ किया और फिर—कालप्रियनाथस्य कालप्रियाम्बिकापतेः—कहकर उन्हें कालप्रिया अम्बिका का पति –शिव सिद्ध किया। उन्होंने यह भी लिखा है कि कालप्रियनाथ पाठ से भी शिव का ही बोध होता है। जो कुछ भी हो, टीकाकार कालप्रियनाथ मन्दिर की स्थिति बताने में सहायक नहीं होते। कुछ टीकाकारों ने कालप्रियनाथ को कोई स्थानीय देवता माना है तथा कुछ ने पुराणों में वर्णित एक कथानक से सम्बन्धित कालप्रिय। 'उत्तररामचरित' के एक अन्य टीकाकार, रामचन्द्र बुधेन्द्र का मत है कि कालप्रियनाथ का मन्दिर विदर्भ के पद्मपुरनगर में स्थित था तथा इसके उत्सव के अवसर पर इस नाटक का प्रथम बार अभिनय किया गया था। किन्तु यह मत उपयुक्त नहीं जान पड़ता

क्योंकि भवभूति स्वयं विदर्भ के पद्मपुर के रहने वाले थे तथा उनके पूर्वज पिछली पाँच पीढ़ियों से वहाँ निवास करते आ रहे थे। यदि यह नाटक पहली बार पद्मपुर में खेला गया होता, तो भवभूति को अपनी विद्वत्ता तथा अपने पूर्वजों के बारे में इतना विस्तृत परिचय देने की आवश्यकता न पड़ती जैसा कि अपने प्रथम दो नाटकों में दिया है। इसके अतिरिक्त, विदर्भ में भवभूति के समय के किसी ऐसे मन्दिर के अस्तित्व का प्रमाण नहीं मिलता। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि कालप्रियनाथ का मन्दिर, जहाँ भवभूति के नाटकों का सर्वप्रथम मंचन हुआ था, उनके जन्म-स्थान से पर्याप्त दूरी पर अवस्थित था। चूँकि नाटककार को लोग भलीभाँति नहीं जानते थे, अतः अपने नाटकों की प्रस्तावना में अपने तथा अपने पूर्वजों के बारे में विस्तृत जानकारी देने की आवश्यकता समझी।

भवभूति के नाटकों के आधुनिक टीकाकारों ने भगवान् कालप्रियनाथ को उज्जयिनी का महाकाल माना है। महाकाल का मन्दिर, निस्संदेह पुरातन काल से अत्यन्त विख्यात रहा है तथा उसमें स्थापित लिङ्ग भारत के प्रसिद्ध द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों में से एक माना जाता है। महाकाल का उल्लेख महाकवि कालिदास ने भी किया है। अस्तु, यह सामान्यतः माना जाने लगा कि भवभूति भी शिव के अनन्य भक्त थे। अतः इस धारणा के अनुसार इसे स्वीकार करने में कोई आश्चर्य नहीं किया जा सकता कि भवभूति के नाटक महाकाल के मेले के अवसर पर खेले जाते थे। यही कारण है कि कालप्रियनाथ के, उज्जयिनी के महाकाल के रूप में तादात्म्य को सामान्य स्वीकृति प्राप्त होती रही।

उपर्युक्त मत किसी भी प्रकार उचित नहीं जान पड़ता। भगवान् महाकाल का उल्लेख निस्सन्देह पुराण जैसे अनेक संस्कृत ग्रन्थों में हुआ है, किन्तु उन्हें कहीं भी कालप्रियनाथ नहीं कहा गया है। इसके अलावा भवभूति शिव के अनन्य भक्त नहीं जान पड़ते अन्यथा वे भी कालिदास की भाँति अपने नाटकों के आरम्भ में शिव की वन्दना अवश्य करते। भवभूति ने अपने एक नाटक 'मालती माधव' में शिव की स्तुति में एक मङ्गल श्लोक को समाहित अवश्य किया है, किन्तु यह एक परिहास पूर्ण विवरण में गणेश से सम्बन्धित है। महावीरचरित के नान्दी में उन्होंने स्वयं-व्याप्त शाश्वत चेतना अर्थात् ब्रह्म के प्रति श्रद्धा प्रकट की है, जब कि उत्तररामचरित में अपने पूर्ववर्ती कवियों के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है।

'मालती माधव' की प्रस्तावना से ज्ञात होता है कि भवभूति ने वेद, उपनिषद् तथा दर्शन की सांख्य एवं योग-परम्परा का अध्ययन किया था। अतः धार्मिक क्षेत्र में उनके विचार अत्यन्त उदार थे। वे दृढ़मत थे कि सभी देवी-देवताओं के पार्श्व में एक शाश्वत सत्य के रूप में ब्रह्म छिपा हुआ है।

इस प्रकार भवभूति कट्टर शैव-मतावलम्बी नहीं थे। अतः कालप्रियनाथ, जिसके मेले के अवसर पर भवभूति के नाटक खेले जाते थे, का तादात्म्य आवश्यक नहीं कि उज्जयिनी के महाकाल के ही साथ किया जाय।

अब हम कालप्रियनाथ-मन्दिर के सम्बन्ध में संस्कृत के ग्रन्थ तथा अभिलेखीय साक्ष्यों से प्राप्त जानकारी की ओर ध्यान दिलाना चाहेंगे।

भविष्य, वराह एवं स्कन्द जैसे अनेक पुराणों में कृष्ण के पुत्र शाम्ब की कहानी प्राप्त होती है, जिसके अनुसार जब नारद ने कृष्ण से बताया कि उनकी कुछ पत्नियों के शाम्ब के साथ प्रणय-सम्बन्ध हैं, जो कृष्ण ने मामले की जाँच की और सत्य पाने पर शाम्ब को श्राप दे दिया कि उसे कुष्ठ हो जाय। तत्पश्चात् शाम्ब मूलस्थान चले गये और वहाँ उन्होंने सूर्य की उपासना की और उनकी अनुकम्पा से वह इस निकृष्ट रोग से मुक्त हो गये। तदुपरान्त भगवान सूर्य ने उनसे कहा कि उसे शीघ्र ही उनकी (सूर्य की) प्रतिमा प्राप्त होगी जिसे वह उस स्थान (मूलस्थान) पर स्थापित करा दें। जब शाम्ब साधुओं के साथ स्नान हेतु चन्द्रभागा नदी गये, तो उन्हें नदी में तैरती हुई भगवान् सूर्य की एक प्रतिमा दिखाई दी। उन्होंने नदी की धारा से प्रतिमा को निकाला और उसे त्रिभुवन में स्थापित करा दिया। तत्पश्चात् सूर्यदेव ने शाम्ब को बताया कि इस प्रतिमा का निर्माण देवताओं के वास्तुकार विश्वकर्मा ने कल्पवृक्ष से किया है तथा उसी के लिए चन्द्रभागा नदी में प्रवाहित किया है। आगे उन्होंने कहा—

> सान्निध्यं मम पूर्वाह्ने सुतीरे द्रक्ष्यते जनः।
> कालप्रिये च मध्याह्नेऽपराह्णे चात्र नित्यशः॥

लोग मेरी उपस्थिति पूर्वाह्न में सुतीर में, मध्याह्न में कालप्रिय में तथा अपराह्न में इस स्थान अर्थात् मूलस्थान में देखेंगे। पुराणों की कुछ पाण्डुलिपियों में 'सुतीरे' के स्थान पर 'मुण्डीरे' पाठ किया मिलता है। 'वराह पुराण' की निम्न पंक्तियों में उपरोक्त तीनों स्थान की स्थिति इस प्रकार बताई गई है—

> साम्बः सूर्यप्रतिष्ठां च कारयामास तत्त्ववित्।
> उदयाचले च संश्रित्य यमुनायाश्च दक्षिणे॥
> मध्ये कालप्रियं देवं मध्याह्ने स्थाप्य चोत्तमम्।
> मूलस्थानं ततः पश्चाद् अस्तमानाचले रविम्।
> स्थाप्य त्रिमूर्ति साम्बस्तु प्रातर्मध्यापराह्णिकम्॥

उपर्युक्त पंक्तियों के अनुसार शाम्ब ने सूर्य भगवान की प्रतिमा की तीन स्थानों पर स्थापना की—(१) पूर्वीय पर्वत (२) यमुना नदी के दक्षिणी तट पर

काल प्रिय में तथा (३) पश्चिमी पर्वत पर मूलस्थान में। इन तीनों स्थानों में प्रथम को गंगासागर संगम अर्थात् गंगा (नदी) तथा समुद्र का संगम भी कहा गया है। अन्यत्र इसे 'सूर्य-कानन' अथवा 'रवि-क्षेत्र' भी कहा गया है। उड़ीसा के पुरी नगर से ३५ मील की दूरी पर स्थित 'कोणार्क' अथवा 'कोणादित्य', जहाँ पर एक प्रसिद्ध सूर्य-मन्दिर है, ब्रह्मपुराण के अनुसार 'रवि-क्षेत्र' है। इस सूर्य मन्दिर का निर्माण १३ वीं शताब्दी में गंगवंशीय शासन नरसिंह प्रथम ने कराया था। इसकी स्थापत्य सम्बन्धी विशेषताओं का वर्णन करते हुए सर जॉन मार्शल ने कहा है कि 'यदि कोई मुझसे प्राचीन भारत के सर्वोत्तम स्थापत्यकला सम्बन्धी स्मारकों के बारे में बारे में पूछे तो मैं बिना किसी प्रकार के संकोच के मुस्लिम स्मारकों में आगरे का ताजमहल, हिन्दू स्मारकों में कोणार्क का काला मन्दिर (सूर्य मन्दिर) और एलोरा का कैलाश मन्दिर तथा बौद्ध, स्मारकों में अजन्ता गुहा के भित्ति-चित्र एवं साँची के स्तूप का नाम ले सकता हूँ।' कोणार्क का यह मन्दिर समुद्रतट पर बना हुआ है जो निश्चित ही एक पवित्र स्थल माना जाता रहा है।

सूर्योपासना का दूसरा प्रसिद्ध स्थल पश्चिमी दिशा में पुराणों के अनुसार चन्द्रभागा (चेनाब) नदी के तट पर आधुनिक मुल्तान अथवा मूलस्थान था। मध्यकाल में मुल्तान में एक सुरक्षित सूर्य मन्दिर था। अरब इतिहासकारों ने इस मन्दिर की सूर्य प्रतिमा का जो वर्णन किया है, उससे ज्ञात होता है कि इसका निर्माण लकड़ी से किया गया था तथा इसकी आँखों में दो रत्न लगाये गये थे। यह विवरण भविष्य पुराण के उस अंश की पुष्टि करता है जिसमें मूर्ति के चन्द्रभागा नदी में तैरने का उल्लेख पाया जाता है। मुल्तान का सूर्य मन्दिर अत्यन्त समृद्ध था क्योंकि केवल पंजाब और सिन्ध के ही नहीं अपितु सारे देश के विभिन्न भागों से आकर्षित होकर यात्री यहाँ आते थे। जब मुहम्मद कासिम ने मुल्तान को अधिकृत किया, तो उसे १३ हजार दो सौ मन सोना इस मन्दिर से प्राप्त हुआ था। यद्यपि अरब आक्रान्ता मूर्तिभंजक थे, किन्तु उन्होंने मुल्तान की इस सूर्य मूर्ति की उपासना में कोई व्यवधान नहीं डाला क्योंकि उन्हें भक्तों से चढ़ोत्तरी के रूप में बहुत बड़ी धनराशि मिलती रही। उत्तरी भारत के प्रतीहार तथा अन्य शक्तिशाली शासकों ने इस नगर (मुल्तान) को मुसलमानों के अधिकार से मुक्त कराने का प्रयास किया, किन्तु उन्हें सफलता नहीं मिल सकी; क्योंकि जब भारतीय अरब आक्रान्ताओं को पीछे खदेड़ने लगते, तो वे इस मूर्ति को तोड़ डालने की धमकी देते। परिणामस्वरूप उन्हें वापस लौटना पड़ता।

हम देख चुके हैं कि सूर्य के प्रसिद्ध मन्दिर पूर्व में मुतीर अथवा कोणार्क तथा पश्चिम में मूलस्थान में थे जहाँ देश के दूरस्थ भागों से तीर्थ यात्री एक-

त्रित हुआ करते थे। सूर्योपासना के तीसरे स्थल कालप्रिय के साथ भी यही बात थी। यह स्पष्ट रूप से उत्तरी भारत के मध्यभाग में स्थित था और पुराणों के अनुसार यहाँ मध्याह्न में भगवान् सूर्य साक्षात् उपस्थित होते थे। बराह पुराण के उपरोक्त अंश से स्पष्ट होता है कि कालप्रिय यमुना नदी के दक्षिणी तट पर स्थित था। राजशेखर की 'काव्य मीमांसा' से ज्ञात होता है कि यह गाधिपुर अथवा कन्नौज की दक्षिण दिशा में स्थित है। अतः यह सम्भावना की जा सकती है कि यमुना के तट पर स्थित 'कालपी' तथा 'कालप्रिय' एक ही हैं। कालपी में आज भी कुछ प्राचीन टीले हैं, जिनमें 'कालप्पदेव का टीला' इस सन्दर्भ में विशेष उल्लेखनीय है। यह टीला सम्भवतः उस स्थल का निर्देश करता है, जहाँ पहले भगवान् कालप्रियनाथ का मन्दिर था।

कालप्रिय के यमुना नदी के तट पर स्थित होने तथा इसके विस्तृत प्रांगण-सम्बन्धी तथ्य अभिलेखीय साक्ष्यों से भी प्राप्त होता है। ०वीं शताब्दी के आरम्भ में राष्ट्रकूट राजा इन्द्र तृतीय दक्कन मे शासन करता था। अपने राज्यारोहण के तुरन्त बाद लगभग ९१५ ई० में उसने कन्नौज पर आक्रमण कर उसे धूलिसात कर दिया। इस अभियान के दौरान यमुना नदी पार करने के पूर्व वह कुछ समय के लिए अपनी सेना सहित काल प्रिय के विस्तृत प्रांगण में रुका था। काम्बेदानपत्र की निम्न पंक्तियों में इस घटना का सजीव वर्णन इस प्रकार प्राप्त होता है—

यन्माद्यद्द्विपदन्तघातविषमं कालप्रियप्राङ्गणं
तीर्णा यत्तुरगैरगाधयमुना सिन्धुप्रतिस्पर्धिनी।
येनेदं हि महोदयारिनगरं निर्मूलमुन्मूलितं
नाम्नाद्यापि जनैः कुशस्थलमिति ख्यातिं परां नीयते॥

भगवान् कालप्रिय के (मन्दिर का) प्रांगण उद्धत हाथियों के दंत प्रहार से ऊँचा-नीचा कर दिया गया। उसके घोड़ों ने विस्तार में समुद्र की प्रतिस्पर्धा करने वाली अथाह यमुना नदी को पार किया जिसने अपने शत्रु के नगर महोदय को समूल ध्वस्त कर दिया, जिसे आज भी लोग कुशस्थल के नाम से विख्यात रूप में जानते है।

इस श्लोक के यह स्पष्ट होता है कि भगवान् कालप्रिय अथवा कालप्रियनाथ के मन्दिर का प्रांगण इतना विस्तृत था कि इन्द्र तृतीय की हाथी घोड़ों तथा पदाति सैनिकों की संयुक्त वाहिनी इसमें समाहित हो गई थी। यह नगर जिसमें मन्दिर अवस्थित था, यमुना नदी के तट पर स्थित था, क्योंकि अभिलेख के अनुसार कन्नौज पर आक्रमण करने के पूर्व इन्द्र की सेना को यमुना

नदी पार करना पड़ा था। काम्बे दानपत्र के लेखक ने इन्द्र तृतीय के इस उत्तर भारतीय अभियान के सन्दर्भ में किसी अन्य नगर का उल्लेख नहीं किया है। कालप्रिय उल्लेख निश्चित ही इस बात का संकेत है कि यह स्थान अपने सूर्य मन्दिर के कारण सारे देश में विश्रुत हो चुका था तथा इन्द्र कन्नौज तक तभी पहुँच सकता था, जब वह इस स्थान पर यमुना नदी को पार करे। कालप्रिय का आधुनिक रूपान्तरण कालपी, मान्यखेट (मालखेड) से कन्नौज के मार्ग पर अवस्थित था; जहाँ से कन्नौज केवल ७५ मील दूर है। यद्यपि अभिलेख में इस बात उल्लेख नहीं है कि कालप्रिय के मन्दिर में किस देवता की उपासना की जाती थी, फिर भी इस नगर के जो अन्य विवरण प्राप्त होते हैं, वे पुराणों तथा 'काव्य मीमांसा' के विवरण से साम्य रखते हैं।

उपर्युक्त परिचर्चा से यह स्पष्ट हो जाता है कि कालप्रिय (आधुनिक कालपी) में विस्तृत प्रांगण वाला एक विख्यात सूर्य मन्दिर था, जिसकी ओर आकृष्ट होकर देश के कोने-कोने से लोग दर्शनार्थ आया करते थे। अतः वह स्थान, जहाँ भवभूति के नाटकों का आरम्भिक मंचन किया गया था, उज्जयिनी नहीं कालपी था। इस मत की पुष्टि में हम महाकवि (भवभूति) द्वारा 'मालती माधव' को प्रस्तावना में भगवान् सूर्य की स्तुति में से सम्बन्धित निम्न पंक्तियों के अभिप्राय का महत्त्व समझ सकते हैं—

कल्याणानां त्वमसि महसां भाजनं विश्वमूर्ते
धुर्या लक्ष्मीनथ मयि भृशं धेहि देव प्रसीद।
यद्यत्पापं प्रतिजहि जगन्नाथ नम्रस्य तन्मे
भ्रद्रं भ्रद्रं वितर भगवन् भूयसे मंगलाय॥

भवभूति के नाटकों का कालप्रिय में अभिनय होते रहने से उसका यश कन्नौज के राजा यशोवर्मन् के पास पहुँचा। वाक्पतिराज के 'गौडवहो'' तथा कल्हण की 'राजतरंगिणी' से ज्ञात होता है कि तत्पश्चात् यशोवर्मन् ने उसे अपने दरबार में आमंत्रित किया और उदारतापूर्ण संरक्षण प्रदान किया।

अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि महाकवि भवभूति के नाटक में वर्णित कालप्रियनाथ का मन्दिर भगवान् शिव को नहीं, वरन् सूर्य को समर्पित था तथा उज्जयिनी में नहीं, अपितु कालपी में था।

याद-टिप्पणी—

१. पी० वी० काणे द्वारा सम्पादित 'उत्तरराम चरित' देखें।
२. महावीर चरित पर वीरराघव की टीका देखें, निर्णय सागर-प्रेस १९१०, पृष्ठ ६।
'कालप्रियनाथस्य' इति ह्रस्वान्तप्रियशब्दयुक्त पाठः प्रचुरो दृश्यते।

तत्तात्पर्थः पूर्ववत्। क्षेत्रविशेषस्येश्वरमूर्तिविशेषसंज्ञाभूते कालप्रियानाथ शब्दे 'ङ्यापोः संज्ञाछन्दसोर्बहुलम्' इति वैकल्पिक ह्रस्व प्रवृत्तेः।
३. कालप्रियनाथो नाम विदर्भेषु पद्मनगरे प्रतिष्ठितो देवमूर्तिविशेषः। तस्य यात्रायामुत्सवे नाटक मिदं कालप्रियनाथस्य पुरतः प्रथममभिनीतमासीत्। प्रो० काणे द्वारा उत्तररामचरित में उद्धत टिप्पणी, पृष्ठ ८।
४. ऊपर देखें, टिप्पणी, पृष्ठ ३।
५. यद्वेदाध्ययनं तथोपनिषदां सांख्यस्य योगस्य च ज्ञानं तत्कथनेन किं न हि ततः कश्चिद् गुणो नाटके।
६. सर जॉन मार्शलः द मानुमेंट्स ऑफ साञ्ची, पृष्ठ १।
७. हिस्ट्री ऑफ मेडीवल हिन्दू इंडिया, जिल्द १, पृष्ठ ३८६।
८. वही, जिल्द २ पृष्ठ १९८।
९. अनियतत्वाद्दिशामनिश्चितो दिग्विभाग इत्येके।
तथा हि यो गाधिपुरस्य दक्षिणः स कालप्रियस्योत्तरः।
—काव्य मीमांसा, पृष्ठ ९४।
१०. एपीग्राफिया इंडिका, जिल्द ७, पृष्ठ ९४।
११. महोदय एवं कुशस्थल शब्द के दोहरे अभिप्राय हैं। महोदय का तात्पर्य (१) कन्नौज तथा (२) समृद्ध होता है। कुशस्थल कन्नौज का दूसरा पर्यायवाची नाम है। इसका दूसरा तात्पर्य होता है—'ऐसा स्थान जहाँ कुशा घास का बाहुल्य हो' इस सन्दर्भ में अभिलेख के लेखक का बल इस बात पर है कि इन्द्र तृतीय ने कन्नौज की प्रतीहारों की समृद्ध राजधानी को इस प्रकार ध्वस्त कर दिया कि अब वहाँ केवल घास ही घास (कुश) दृष्टिगोचर होती है। कुश घास का उग आना वीरानगी का प्रतीक है। आज कन्नौज की यही स्थिति है।
१२. मालती माधव, अंक १ श्लोक ३।

बुंदेलखंड में परिहार / दीवान प्रतिपाल सिंह

[दीवान प्रतिपाल सिंह जू के अप्रकाशित ग्रंथ 'बुन्देलखण्ड का इतिहास' तृतीय खंड से यथावत उद्धृत यह अंश एक अध्याय के बीच से लिया गया है। परिहारों के इतिहास के संबंध में अभी तक काफी खोज हो चुकी है, फिर भी बुन्देलखंड के इतिहास में परिहारों के प्रवेश का विषय एक नया प्रसंग है। इस कारण यह लेख अधिक उपयोगी सिद्ध होगा और इतिहासकारों का ध्यान इस ओर आकर्षित करेगा। लेखक के १२ खंडों के प्रकाशन की योजना बनना एक अनिवार्य धर्म है और अकादमी प्रयत्नशील है कि एक-एक खंड को प्रकाशित किया जाय। उदारमना महानुभावों से निवेदन है कि वे इस योजना में अपने योगदान के लिये अकादमी को लिखने का कष्ट करें। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, केन्द्रीय सरकार और प्रांतीय शासन से सम्पर्क करने के बाद स्थिति से अवगत किया जायगा। इस सब में लेखक के सुपुत्र कुँवर पृथ्वीसिंह बुन्देला का सहयोग सदैव स्मरणीय रहेगा, जिनके सौजन्य से ही ये अंश प्रकाशित किये जा रहे हैं। —सम्पादक]

भविष्य पुराण में चार अग्निकुलों के सम्बन्ध में जो लेख है, वे परमारों के इतिहास में दिये हैं। उन्हीं चार अग्निकुलों में से एक परिहार कुल लिखा है। उनकी सृष्टि ३७१० गतकलि में हुई थी। परिहार चित्रकूट पर्वत-देश कालिजर में रहे थे। इसका समय बैठाने से वर्तमान् समय में ५०३२ गतकलि के हिसाब से ३७१० गतकलि, अब से १३२२ वर्ष पहले लगभग ६०६ ई० में बैठता है। आधुनिक विद्वान परिहारों को हूणों का साथी तथा हर्ष के उपरान्त बढ़ने वाला बतलाते हैं। हूण ४५५ ई० के लगभग आये। वे ५२५ या ५३३ ई० में निकाले गये थे। तदुपरान्त भिनमाल का गुर्जर प्रतिहार-राज्य कायम हुआ था। उसका ज्ञात राजा वत्सराज ७००-७५० ई० में बंगाल तक धावा कर गया था। फिर ८१० ई० में उसके पुत्र नागभट्ट ने कन्नौज लिया था।

विचार करने से परिहारों के प्रादुर्भाव अथवा बढ़ती का पौराणिक समय लगभग ६०० ई० गहंतमात्र होना नहीं जान पड़ता। प्रायः यही समय अन्य अग्नि वंशी क्षत्रियों के प्रादुर्भाव का भी हो सकता है। प्रायः सब पौराणिक समय तथा कथन विचार करने से ऐतिहासिक ढंग पर बैठते जाते हैं।

भविष्य पुराण में परिहारों की वंशावली इस प्रकार दी है—

१. परिहार-अथर्ववेद-देवी पूजक, बौद्धों को जीता, देवी ने चित्रकूट पर्वत पर कालिजर बसा दिया। १२ वर्ष। →२. (अ) गौर वर्मा (१२ वर्ष, गौड़ देश को गया, वहाँ राज्य किया, राजा सुपर्ण का राज्य छीना) (ब) घोर वर्मा (कालिजर) →३. रूपण (पितुसम) →४. कार वर्मा या काम वर्मा (५० वर्ष)→५. (अ) भोगवर्मा (पितुसम) (ब) भोगवती-विक्रम →६. कालवर्मा (कलकत्ता बसाया,→७. कौशिक (पितुसम →८ कात्यायन (पितुसम) →९ हेमवत (पितुसम) →१०. शिववर्मा (पितुसम) →११. भववर्मा (पितुसम) →१२. रुद्रवर्मा (पितुसम →१३. भोजवर्मा (पिता का देश छोड़कर भोजाराष्ट्र बनाया, (पितुसम) →१४. गववर्मा (पितुसम) →१५. विंध्यवर्मा (पितुसम अपने भाई को राज्य दे बंग को गया)→१६. सुखसेन (पितुसम) →१७. बलाक (१० वर्ष)→१८. लक्ष्मण (पितुसम)→१९. माधव (पितुसम) →२०. केशव (पितुसम) →२१. सुरसेन (पितुसम) →२२. नारायण (पितुसम) →२३. शांतिवर्मा (पितुसम गंगा तीर पर शांतिपुर बसाया) → २४. नंदीवर्मा (गौड़ देश में नदिया ग्राम बसाया) २० वर्ष-इसमें गंगा वंश हुआ →२५. शार्ङ्गदेव (१० वर्ष) →२६. गंगादेव (२० वर्ष) →२७. अनंग (पितुसम) →२८. राजेश्वर (पितुसम) →२९. नृसिंह (पितुसम) →३०. कलिवर्मा (ये राष्ट्रदेश को गया, वहाँ के महांवती पुरी महोबा के राजा को जीता, पितुसम) →३१. धूतिवर्मा (पितुसम) →३२. महीपति [जयचंद्र की आज्ञा से उर्वी (उरई) बसा वहां रहा, कुरुक्षेत्र में सब चन्द्रबंशी क्षत्रिय मारे गए तब महीपत महांवती का राजा हुआ। २० वर्ष राज्य किया, सहोद्दीन (शहाबुद्दीन) के युद्ध में कुरुक्षेत्र में मारा गया] →३३घोरवर्मा (कालिजर में राज्य किया) →३४. शार्दूल (उसके वंश के लोग शार्दूलीय कहाए)।

बारहट स्तूप के वर्णन के सम्बन्ध में सरस्वती (१२-३ १९१६) में एक लेख निकला था, जिसमें लिखा था कि "बारहट-नागोद उचहरा राज्य में हैं। यहाँ के राजा उदयन (कौसाम्बी), अशोक (मगध), समुद्रगुप्त (मगध), श्रीहर्ष (कन्नौज) और जैचन्द (कन्नौज) के अधीन रहे हैं। इस स्थान का प्राचीन नाम वरदावती था। यह सुघन प्रान्त में अच्छा नगर था। इसके आस-पास प्राचीन शिलालेख, ताम्रपत्र तथा सिक्के मिले हैं। इनमें से कितने ही ३५०-४०८ ई० के हैं। अशोक के समय में यहाँ होकर उज्जैन-पटना की सड़क थी। यहाँ के स्तूपों की ईंटों से आस पास के कई गांव बसे हैं। यहाँ एक बहुत बड़ा

स्तूप तथा कई विहार थे। यहाँ पर कितनी ही ऐतिहासिक सामग्री निकली है। यहाँ पर शुङ्गवंशी धनभूत का २४० ई० पूर्व का लेख मिला है। यह स्थान २५०० वर्ष से अधिक प्राचीन है।"

पंडित गोरेलाल जी अपने संग्रह (हस्तलिखित) में लिखते हैं कि "देवशाहि या देवशक्ति का पुत्र वत्सराज परिहार था। वत्सराज का पुत्र नागभट्ट था, जिसने मौखरियों से कन्नौज छीनी थी। इसी समय कन्नौज के परिहारों ने दशान से पश्चिम ओर का देश भी गहरवारों से छीन लिया था। देवगढ़ के लेख से वहां परिहारों का कब्जा हो जाना प्रमाणित है।

जान पड़ता है कि देश का नाम पहले जुझौति था, जिसका सम्बन्ध यज्ञों या जुझौतियों या जुझारसिंह से होना कहा जाता है। पीछे जयशक्ति या जेजाचंदेल के नाम से ८५० ई० के लगभग देश का नाम जेजाभुक्ति हो गया था।

जयवर्मन चंदेल ने भीमपाल परिहार के पुत्र शुक्रपाल को परास्त कर गंज गढ़ो (मजहरा-छतरपुर) से हटा दिया था। तब वे धसान किनारे कोटरा को गए थे। वहाँ १३४४ ई० तक ३ लाख का राज्य करते रहे थे। शुक्रपाल के ६ वें वंशज महीपाल ने मऊ-सहानियाँ में यज्ञ किया था। वहाँ ग्रहों के मंदिर आदि मौजूद हैं। इससे पहले तथा चंदेलों के बढ़ने पर परिहार चंदेलों के मेल में रहे थे। मदनवर्मन के समय में बिगाड़ हो गया था। तब वे गंज गढ़ी से हटे थे। उनकी वंशावली इस प्रकार है—१. भीमपाल २. शुक्रपाल ३. सहमपाल ४. सेनपाल ५. रुद्रपाल ६. उदयपाल ७. महीपसिंह ८. सधरमल ९. रामसिंह १०. महीपाल और, ११. भूपाल।

अर्ली हिस्ट्री आफ इंडिया (२८ पृ०) में लिखा है कि "जब परिहार बढ़े, तब दशार्ण का पूर्वी भाग उनके अधिकार में हो गया था। पश्चिमी भाग गहरवारों के कब्जे में रहा था। १५० वर्ष तक परिहारों की राजधानी मऊ में रही थी ९ वीं श० ई० में चन्द्रब्रह्म ने उन्हें जीता था।"

नन्नुक चंदेल ने ८३१ ई० में मऊ के अंतिम युद्ध में परिहारों को परास्त कर राज्य ले लिया था। तब परिहार दो भागों में बँट गए थे। कुछ उत्तरी भागों में रहे थे और कुछ दक्षिण की ओर सागर, दमोह, जबलपुर आदि को चले गए थे। १३४४ ई० में उन्होंने नारो (नागौद) का किला ले लिया था।

एक हस्तलिखित पुस्तक में पड़िहार वंश के विषय में यह लिखा मिला है : राजा शिवतास सूर्यवंशी की यज्ञ तें पड़िहार निकले। ब्रह्मा ने उन्हें झंझागढ़ की गद्दी दी। उनकी १२ कुरीं हैं—१. भामा २. भाइल ३. आरि ४. जगदेलों ५. मौरेठिया ६. गजकेसर (कदाचित सिंगोरगढ़ का गजसिंह १३०७ ई०) ७. खडकेसर ८. कांकरा ९. भुतहा १०. कनिपतिया ११. रैकुवार १२. कल हंस।

इस वंश में राजा वैन हुए।

वैन—ये बड़ा राजा हुआ इसने अमल और कर किसी से नहीं लिया, उसी वंश में जुझारसिंह हुए।

जुझारसिंह—राजा हुए, संवत् ३९५ में चंदेलों से नतैती की, चंदेलों ने सरसेड़ में बैठाला, वहीं जागीर दी, इन्होंने सं० ४०७ में एक यज्ञ की और १६ घर ब्राह्मण पुजे, वे जुझौतिया कहलाए—

मुनिखाँ वेद विक्रमाब्दे पुजितः द्विज षोडशः।

अग्निवंश समुद्भूदतौ जुझारः नृप धीमतीः॥

महीपक्ष—उसी वंश में राजा महीपक्ष हुए, जिन्होंने मऊ में राज्य किया और एक यज्ञ किया।

माहिल भूपति—उसी वंश में माहिल राजा हुए, जिन्होंने मुड़ाहरी में राज्य किया। उस वंश के हाल में मौजूद है।'

इसमें जुझारसिंह के सम्बन्ध में जो संवत् ३९५ तथा ४०७ दिये हैं, वे अधिक प्रचलित विक्रम, शक तथा रासे के आनंद संवतों की खिचड़ी जान पड़ते हैं। शक संवत् मानें तो ४७५-४८७ ई० होते हैं। विक्रम संवत् माने तो ३३८-३५० ई० होते हैं। आनंद संवत् माने तो ४३०-४४२ ई० होते हैं।

४८४ ई० के एरन के लेख से वहाँ उस समय गुप्तों के मांडलीक सुरश्मिचन्द (?) के मातहत ब्राह्मण (?) गवर्नर होने का पता चला है। शक संवत् के मानने से जुझारसिंह परिहार का उपरोक्त यज्ञ काल तथा जुझौतिया ब्राह्मणों के प्रतिष्ठित होने का समय ४८७ ई० है। यह प्रायः टक्कर खाता है।

४५५ ई० के लगभग एरन में हूण आय थे, ५२५ ई० में यशोधर्मा (?) ने उन्हें निकाला था। पीछे मौखरि बढ़े थे। निदान जुझारसिंह का यज्ञ तथा जुझौतिया होने का संवत् नितांत गढंत ही नहीं पड़ता है। संभव है, नाम में कुछ भेद हो। उनके वंशज सम्बन्ध का सूत्र भी समय आदि के विचार से, विद्वानों के मत के अनुसार, हूणों से मिलता-सा है।

महीपक्ष परिहार का मऊ सहानियां में होना कहा गया है। यहाँ भी यही माना जाता है। परंतु साथ ही यह भी अनुमान होता है कि मऊ में परिहार थे तो अवश्य, परंतु सहानियाँ गाँव से ग्वालियर राज्य के सुहानीय गाँव का अभिप्राय जान पड़ता है। इस सुहानीय गाँव के बहुत प्राचीन होने के प्रमाण है, तथा उसे कन्नौज के विनयचंद गहरवार ने ११७० ई० में विजय किया था। अतः वह विशेष गौरव का अधिकारी तथा राजधानी माने जाने के योग्य है। जान पड़ता है कि इसी समय से गहरवारों तथा परिहारों के शासन का तथा उनके

लड़ाई-झगड़ों का सिलसिला बुंदेलखण्ड तथा कन्नौज में आरम्भ हुआ था। परिहार गुर्जर हूणों के वंशज या साथी थे और हूणों के रूप में ४५५-४८४ ई० के बीच इन प्रांतों में बसना आरम्भ हुए थे और बढ़ते-बढ़ते ४१० ई० में कन्नौज के अधिकारी हुए थे।

गहरवार मौखरि यशोधर्मा, सुरश्मिचंद्र एक ही वंशज क्रम के होना जान पड़ते हैं। हूणों के आगमन ४५५ ई० से पहले गुप्तों का सार्वभौम शासन था। एरन के ४-४ ई० के लेख से पता चलता है कि उस समय तक यमुना से नर्मदा तक का भाग गुप्तों के मांडलीक एक महाराज सुरश्मिचंद्र के अधिकार में था। कदाचिद् सुरश्मिचंद्र का शासन-क्षेत्र कन्नौज-चंबल तक विस्तृत था। सुरश्मिचंद्र की मातहती में एरन में ब्राह्मण गवर्नर था। इस समय से थोड़े ही उपरान्त उसी ब्रह्मण गवर्नर का भाई उसी एरन में हूणों का शासन-काल अपने एक लेख में बतलाता है। अतः ४८४ से ५२५ ई० तक एरन के गवर्नर ब्राह्मण (अथवा और जो रहे हों) हूणों के मातहत रहे थे। इसी समय ४८७ ई० के लगभग जुझार सिंह नाम से प्रख्यात परिहार राजा ने यज्ञ कर जुझौतियों को प्रतिष्ठित किया था। हुण मगध साकेत तक बढ़ गये थे। इस काल में सुरश्मिचंद्र का पता नहीं मिलता कि उसका क्या हुआ। परंतु शीघ्र ही यशोधर्मा ने सहसा बढ़कर ५२५ ई० के लगभग हूणराज मिहिरकुल को निकाल दिया था। यशोधर्मा का भी इससे अधिक वृत्तांत नहीं मिलता है।

हमारा अनुमान है कि यशोधर्मा (५२५ ई०) सुरश्मिचंद्र (४८४ ई०) का पुत्र था। हूणों के बढ़ने से सुरश्मिचंद्र के शासन प्रभाव को ही बहुत हानि पहुंची थी। कदाचित कन्नौज से लेकर नर्मदा तक उसी का शासन था और विशेषकर वही भाग हूणों ने दबा लिया। उसके एरन के ब्राह्मण गवर्नर हूणों में मिलकर विशेष प्रतिष्ठा को प्राप्त हो किसी अज्ञात कारण विशेष से जुझौतिया प्रख्यात हुए थे, जिनसे वह प्रांत जुझौति कहलाने लगा था। ये बातें ४८४-५२५ ई० के बीच हुई थीं। इस काल में सुरश्मिचंद्र के पुत्र यशोधर्मा ने जैसे-तैसे बल संचय किया था, तथा साथ ही गुप्त राजा नरसिंह गुप्त बालादित्य को भी संभाला था। नरसिंह ने मगध की ओर से हूणों का खदेड़ा था। संभव है यशोधर्मा भी इस पहले खेड़े में भी साथ हों। जब वे यशोधर्मा की पैतृक शासन सीमा (कन्नौज, बुन्देलखण्ड, मध्यभारत) के अंदर पहुंचे, तो इसने स्वतंत्र पौरुष से उन्हें और आगे उत्तर-पश्चिम को खदेड़ दिया। यह घटना लगभग ५२५ ई० की है। हूणों के प्रबल दल या नेता चले गये, परंतु उनसे कुछ लोग किसी न किसी स्थिति में बुन्देलखन्ड, मध्यभारत, राजपूताना में बस और जमा गए। यही पीछे गुर्जर प्रतिहार, गूजर और परिहार कहलाए। साधारण जनता 'हूणों' की याद भूल गई। उनके अंतिम नामों गूजरों और परिहारों से आरंभ से अब तक सब को गूजर या परिहार माना। इसी से ४५० ई० से ही परिहारों के अस्तित्व, आबादी तथा शासन के किस्से हैं।

हूण चले गये, पर गुप्तों को निर्बल करते ही गये, साथ ही यशोधर्मा बलवान हुआ। ठीक इसी समय कन्नौज में मौखरि नाम का कुल बढ़ा। विजय यशोधर्मा ने की थी और बढ़ा मौखरि कुल, जिनका परस्पर संबंध होने अथवा स्वतंत्र रूप से आगे पीछे का कुछ पता होने का तनिक भी सूत्र नहीं मिलता है। मौखरि कुल मगध के गुप्तों से ब्याह, संधि, विग्रह आदि करता रहा था। इस समय गुप्त मौखरियों के मुकाबले के नहीं रहे थे। मौखरियों ने सिंध सौराष्ट्र से लेके बंगाल तक समस्त उत्तर भारत का स्वामित्व प्राप्त किया था। उस समय इस भूमि के भीतर परिहार आदि जो भी थे, सब उनके मातहत रहे थे। यह मौखरि कुल पहले ६०६ ई० तक शासन करता रहा था। गृहवर्मा मौखरि को मालवा के शिलादित्य गुप्त ने मार डाला था। तब कन्नौज पर ६५० ई० तक हर्ष आदि का शासन रहा था। तदुपरान्त फिर मौखरि बढ़े थे। ७५ ई० के लगभग भिनमाल के परिहार वत्सराज ने उनको छोड़ा था, परंतु उनके सहायक धर्मपाल तथा राष्ट्रकूट राजा ने परिहार राजा को वापस मार भगाया था। उस समय ग्वालियर परिहारों का कब्जा हो ही गया था। अतः उस समय से फिर नवीन दल के परिहार यहाँ जमने और बढ़ने लगे थे। अंत में ८१० ई० में नागभट्ट ने कन्नौज का विजय कर मौखरि राज्य की समाप्ति कर दी थी।

८१० ई० से १०४० ई० तक परिहार उत्तर भारत के सम्राट रहे थे। १०४० ई० में गहरवार नाम के क्षत्रियों ने कन्नौज पर कब्जा कर लिया था। ये ११९८ ई० तक शासक रहे थे। इसी समय चन्देल बढ़े थे।

सुरश्मिचन्द्र, यशोधर्मा, मौखरि, महरवार के समयों के साथ-साथ ही बुन्देलखण्ड में गहरवारों का शासन होना कहा जाता है। पहले गहरवार थे, फिर परिहार हुए, फिर थोड़े समय के लिए थोड़े भाग पर गहरवार हुए और फिर परिहारों के उपरान्त चन्देल हुए। अंत में चन्देलों से उपरान्त गहरवारों की शाखा बुन्देला हुए। निम्न नक्शे से कन्नौज तथा बुन्देलखण्ड के संबंध में यह बात स्पष्ट होगी—

४००—४८४ ई०—सुरश्मि चंद्र-(गहरवार)
४८४-५२५ ई०—हूण—(परिहार)
५२५—६०६ ई०—यशोधर्मा-मौखरि (गहरवार)
(गृहवर्मा से गहरवार कहलाये)
६०६-६४८ ई०—**बैस—मौखरि**—(गहरवार)

६५०-८१० ई०—मौखरि (गहरवार)

८१०-१०४० ई०—परिहार

९००-१३०० ई०—चंदेल

१०४०-११९८ ई०—गहरवार

१३०० ई० से—बुन्देला

मुरश्मिचन्द्र, यशोधर्मा मौखरि का अंतिम कुल-नाम गृहवर्मा से गहरवार पड़ा था। अतः लोग पहले सब कुल-नामों को भूलकर केवल गहरवार जानते और कहते हैं। इसी प्रकार वे बुन्देलों के सिलसिले में गहरवार नाम भूलकर केवल बुंदेल को याद करते हैं। इन सब बातों के विषय में उनके संबन्ध के अलग-अलग इतिहासों में विस्तृत वर्णन दिये गए हैं।

छत्रसाल बिना छत्र लिये नहीं मानेगा

घनश्याम दास पाण्डेय

[बुन्देलखंड के स्वतंत्रता-संघर्ष के प्रतीक राष्ट्रवीर छत्रसाल की पावन जयन्ती (ज्येष्ठ शुक्ल ३) पर मऊरानीपुर के कविश्रेष्ठ स्व० घनश्याम दास पांडेय की ओजस्वी कृति 'छत्रसाल-बावनी' के कुछ छंद श्रद्धांजलि-स्वरूप अर्पित, उन्हीं के पौत्र श्री राजेन्द्र पांडेय के सौजन्य से।

—सम्पादक]

आज भांति और ही प्रकाशमान भासमान,
आज छवि और ही है उदित उजेला की।
आज और ही बहार विटप कतार पर,
और ही प्रकार चहकार खग-मेला की।
विप्र घनश्याम योग लग्न खेटों का सुयोग,
आन जुड़ा बात राखने को वर बेला की।
फूली न समाती है बुन्देलखण्ड वीर-भूमि,
आज है बधाई किसी बांकुरे बुन्देला की॥

चम्पत के लाल छत्रसाल ने बुन्देलन को,
बिरुद बढ़ायो निज कीरति की बोल कें।
क्षीर सिन्धु धार धौत मुक्तावलि हार सम,
धारत दिग्भामिनी उरस्थल पै डोल कें।
विप्र घनश्याम तृप्त कियो है मही को हियो,
दियो रक्तदान बैरिवृन्द को पोल कें।
जेते दिये श्रोणित के बिन्दु तासु बदले में,
पन्ना की पुहुमि देत हीरा तोल तोलि कें॥

बोले दिल्ली पति से अमीर उमराव सब,
सुलह सलाह कौन उससे बखानेगा।
पिदर सलूक का अजब ख्याल उसको है,
आखिर बुन्देला है जो ठाने वही ठानेगा।
विप्र घनश्याम शेर मर्द है न होगा जेर,
खींच शमशेर फेर म्यान में न आनेगा।
मान जाते चम्पत भले ही अन्य सम्पत ले,
छत्रसाल बिना छत्र लिये नही मानेगा॥

———

शब्द बोलते हैं / आचार्य दुर्गाचरण शुक्ल

जी हाँ, शब्द बोलते हैं, अवश्य बोलते हैं। एक दिन हिन्दी के जाने माने वयोवृद्ध विद्वान, आलोचक और हम सबके अपने काका जी—बाबू कृष्णानन्द जी गुप्त से एक शब्द ने कुछ कहा ओर उन्हें सोचने को विवश कर दिया। उन्होंने मुझ पर कृपा की और मुझे भी उस शब्द-चिन्तन के यज्ञ में भाग लेने हेतु प्रेरित किया। इधर किन्हीं निजी कारणों से बुन्देली व्युत्पत्ति-कोष का मेरा कार्य लगभग रुका पड़ा था कि अनायास १५ मई, ८१ को काका जी का पत्र मुझे मिला—

पो० गरौठा, झाँसी
१५-५-८१

प्रिय शुक्ल जी,

'कवितावली' में एक स्थान पर आया है—लागि दवारि पहार ठही, लहकी कपि लंक यथा 'खर खौंकी'।"

खर खौंकी का अर्थ सभी टीकाकारों ने आग किया है। समझ में नहीं आता। खर=तृण। खौंकी=खाने वाली।

सोचा किसी भाषा-शास्त्री की शरण में जाया जाय।

खर का क्या तृण अर्थ होता है? और खौंकी शब्द का प्रयोग भी क्या बोल चाल में अग्नि के अर्थ में होता है? आपने सुना हो, तो कृपया बतायें। खौकी का अर्थ खाने वाला कैसे होगा।

और सब ठीक। आशा है आप सपरिवार सानन्द हैं।

आपका
ह०—कृष्णानन्द गुप्त

इस प्रकार आदरणीय 'काका जी' ने मानो मेरी रुकी गाडी को आगे बढ़ने के लिये प्रेरणा दी।

खर पतवार के सहारे 'खर' को समझा जाये, तो खर=तृण, पतवार=पत्तेवाला, इस प्रकार पत्तेवाला तृण=खरपतवार है (Weed)।

√खल + अच् = खलः, भ्रमण शीलः

खलम् = खलिहान

खल······चलने (काशकृत्स्न व्याकरण)—(१/२४८)

खल संचलने संचयेच (१/३६६)

पं० खलति १ स्थानान्तरण करना, जाना २—बटोरना)—[वाणितीय व्याकरण]

स्खल चलते (१/१००)

खल संचये च (१/१८१)

चान्द्र व्याकरणम् (चंद्र भोगी)

'खलेन परपान प्रतिहम्नि भूरि' ऋग्वेद के एक मंत्र में खल का खलिहान के अर्थ में प्रयोग है, इसी की गवाही यास्क-मिरुक्त के चौथे अध्याय में मिलती है। मनु (११/१७) तथा याज्ञवल्यक (२/२८२) 'खल' शब्द को खलिहान के अर्थ में प्रयोग करते हैं। इस प्रकार संचित तृण अर्थ 'खल' शब्द से संकेतित होता रहा है। अभी भी इसका उपयोग खलिहान के अर्थ में विभिन्न अंचलों में होता है। यथा—

पूर्वी हिन्दी में (बिहार एवं बनारस के आस पास) इसे गाँब में खल कहते हैं। ऐसे खेत को, जिसमें 'खर' उपजे 'खरहुर' कहते हैं।

मालवी में—खला = खलिहान।

राजस्थानी में खाला = खलिहान।।

गोंडी में—कडा = खलिहान।

ये सब 'खल' के ही अलग-अलग उच्चारण भेद हैं (उन्लयो अभेदः--S = ल [पतंजलि]) क् + ह = ख सो मात्र महाप्राणध्वनि 'ह' का लोप होकर वना 'कडा', वैसे ही जैसे कि साहब से 'साब' अपने-आप हो जाता है। इस प्रकार हम इस निश्चय पर आसानी से पहुँचते हैं कि खर, तृण (या तृण विशेष) को संकेत करता है।

खौंकी यह शब्द हमें आज भी पूर्वी अंचलों के गाँवों में मिलता है। श्री फणीश्वर नाथ 'रेणु' ने अपनी कहानी-'लाल पान की बेग़म' में 'सुत खौंकी' और 'भाई खौंकियों' का प्रयोग किया है, जिसका अर्थ होता है—"पूत खानेवाली" और "भाई खानेवाली"। ये दोनों शब्द रेणुजी ने गाली के रूप में प्रयोग किये हैं। अर्थात् आज भी जीवित भाषा में खौंकी = खानेवाली के अर्थ में प्रयुक्त हो रहा है। वामन शिवरामजी आप्टे ने अपने संस्कृत हिन्दी शब्द कोष में 'खादुक शब्द की व्युत्पत्ति दी है:—

खादुक (पु०) (—की, स्त्री)

√खाद उन + कन् = खादुकः (पु०) उत्पाती' नाशकरने वाला।

खादुक (स्त्री) का अर्थ होगा उत्पात करने वाली, नाश करने वाली, जिसमें मूल धातु खाने का अर्थ गर्भित है ही। मेरी समझ में यही खादुकी < खाद् उकी < खाउकी = खौकी अनुनासिकता आने पर 'खौंकी' हो गया, जिसमें मुख्यतः केवल 'द' वर्ण की ध्वनि का लोप हुआ है।

खर = तृण, खौंकी = भक्षी, खानेवाली और खरखौंकी = तृणभक्षी। जैसे अग्नि सर्वभक्षी है, वैसे ही तृणभक्षी भी है। सम्भवतः इसी बजन पर लोक प्रचलितभाषामें अग्नि के लिये आग लगने पर जो विनाशकारी रूप बनता है, उसके लिये 'खरखौंकी' यौगिक शब्द सृजन किया गया।

बेसिक प्रशिक्षण विद्यालय, टीकमगढ़, म० प्र०

गीत के इतिहास मेरे / सुरेन्द्र शर्मा 'शिरीष'

मैं तुम्हारे पास इस क्षण, आज तुम हो पास मेरे,
और ठहरो चार क्षण, बस चार क्षण मधुमास मेरे।

द्वार पर मेरे लगा है चाँद का पहरा,
चांदनी कुछ हो तुम्हें जाने नहीं देगी,
यह रूपहली रात की चंपा महककर
बात ऐसी होंठ तक आने नहीं देगी,

घंटियां झिलमिल सितारों की बजातीं राग कोई,
दूर जाने के लिये आतुर न हो आकाश मेरे।

कामनाओं के सजल अनुरोध तो देखो,
झील-सी फैली क्षितिज तक चाह मतवाली,
पार करने के प्रयासों ने अभी तट पर
थाम रक्खी है सिहरती फूल की डाली,

ज्वार में लहरें न आगे जा सकेंगी नाव कोई,
जिद करो मत आज सांसों में गुँथे उल्लास मेरे।

देखलो आधी भरी है प्यास की गागर,
ये प्रणय के मेघ भी झरकर नहीं बरसे,
मैं नहाया हूँ मगर मन तक नहीं भीगा,
प्राण भी सरसे मगर पूरे नहीं सरसे,

मत मिटाओ गीत की लय चल सकी हैं जो अधूरी,
अक्षरों में ही न उलझो गीत के इतिहास मेरे।

५७, शुकलाना, छतरपुर, म० प्र०

क्रूस पर विचारों का लटका परिवार / राधेश्याम क्षत्रिय

आओ उस पार चलें, आओ उस पार।
बहरों की धरती यह अन्धों का देश
भीड़ तले कुचल गया संचित आवेश
बिखरे सरकण्डों से दबा सा कछार।
दर्दभरे स्रोत यहां गहरी है खाई
थरमस के पानी में दिखती है काई
अन्तर में समा गया एक सा विकार।
मीनारें झुलसाती सूरज की डाह
सड़कों पर घिसट रही जीवन की चाह
क्रूस पर विचारों का लटका परिवार।
मन की पंचाली खुद बढ़ा रही चीर
तजकर गांडीव कहीं दुबका शरीर
पांचजन्य-मौनता में सिमटा संसार।
ढोलक की थपकी पर उछल गया बोल
सिक्के से चिपक गया ग्रंथों का घोल
दर्शन के ओठों से टपक रही लार।
दुखती है आंख और उँगली के पोर
पड़ गई है गांठ नहीं मिलते हैं छोर
भारी मस्तिष्क बढ़ा गर्दन पर भार।

—गांधीगंज, मऊरानीपुर, झांसी

गीतिका / परम लाल तिवारी

बेफिक्र हंस रहे वे अट्टहास की तरह।
हम जी रहे हैं आज एक लाश की तरह॥

ऊपर से दिख रही है बस रंगीन जिंदगी।
घुट-घुट के मर रहे हैं बदहवास की तरह॥

आती है श्रम बिना ही रकम उनके पास रोज।
वे दिख रहे हैं दूधिया प्रकाश की तरह ॥

पहलू में जिनके बैठ के कटते थे रात-दिन।
खलने लगे हैं हम उन्हें बकवास की तरह ॥

कतरा के जाने क्यों वो गुजरते हैं आजकल।
पहले रहे जो साथ किसी खास की तरह ॥

जबसे उन्हें सोंपीं हैं 'परम' घर की चाबियां।
अपनी तो कट रही है बनवास की तरह ॥

—उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, राजनगर

कृष्णप्रिया

राधावल्लभ त्रिपाठी

सबेरे से ही वृष्णिगण के सदस्य वासगृह में ही मिलने आते रहे। सबकी अपनी अपनी समस्याएँ रुक्मिणी, सत्यभामा, जाम्बवती—सब प्रातराश की सामग्री सजाये बैठी रहीं। कृष्ण को अवकाश मिले तब तो।

जैसे तैसे विशेष वार्ता के लिये प्रतिनिधियों को विदा किया ही था कि पीछे से किसी ने दबे पांव आ कर आँखें मूंद दीं। अचकचा गये कृष्ण। यहाँ—द्वारका में—इतने महान् गणतन्त्र के अधिष्ठाता से ऐसा मजाक कौन कर सकता है भला? रुक्मिणी और सत्यभामा वगैरह को इस सबके लिये अवकाश ही कहाँ है? सबको काम बांट दिये हैं उन्होंने फिर भी पहचाना सा लगा स्पर्श। कुछ मीठा, कुछ खारा जैसा।—कौन? उन्होंने पूछा, बहुत सशंक होकर।

—बूझो तो जानें।—कानों में किसी ने स्वर घोला।

अब कोई सन्देह नहीं रहा। हैं, वहीं हैं। हौले से नेत्रों को मूंदने वाली हथेलियाँ उन्होंने अलग कीं, पर आंखों को फिर भी विश्वास नहीं आया।

—तुम यहाँ कैसे आ गयीं?

राधिका खिलखिला कर हँस पड़ीं—तुम क्या जानते थे, मैं यहाँ नहीं आ सकूँगी?

—कल ही मथुरा से आया था एक प्रतिनिधि मण्डल। मैं सोचता था, उसके साथ वृन्दावन से कोई आये या बरसाने से…

—पर मैं किसी मण्डल के साथ नहीं आयी—यही न? सबको अपने मण्डल में जोड़ने की तुम्हारी आदत नहीं गयी अभी? वृन्दावन की मण्डली याद आती है?

—बहुत पुरानी बात हो गयी वह तो। बैठो न, उधर आसन है।

राधिका ने धप् से धौल जमा कर कहा—अब मैं उधर बैठूंगी? इतनी अलग हो गयीं हूँ मैं तुमसे?—फिर कृष्ण का हाथ पकड़ कर वे उनके बगल में जा विराजीं।

—बहुत बड़ी माया जोड़ ली है तुमने कन्हैया—वे विशाल वारागृह की साज-सज्जा निहारती हुई बोलीं—वृन्दावन में तो धूल में खेलते थे, यहाँ समंदर के बीचोंबीच अट्टालिकाएँ और ड्योढ़ियां लांघ कर धूल भी कहाँ पहुँच पाती होगी ?

—तुम जानती ही हो राधिके, यह सब मेरा नहीं है—कृष्ण व्यस्त भाव से बताने लगे।

—तो फिर किसका है ?—राधिका ने विस्फारित नेत्रों से पूछा।

—यह सब जनता का है। यह गणतंत्र है राधिके। यहाँ किसी व्यक्ति का शासन नहीं। गण ही यहाँ व्यवस्था चलाते हैं—जनता के प्रतिनिधि गण।

राधा फिर खिलखिला कर हँस पड़ीं। कृष्ण ने परेशान हो कर पूछा—अब क्यों हंस रही हो ?

—देखती हूँ बातें बनाना और भी ज्यादा सीख गये हो तुम यहाँ आ कर वहाँ भी तो खूब लंबी चौड़ी बातें किया करते थे, बिना सिर पैर की।

कृष्ण ने टाल दिया।—और अपने उधर का कुछ वृतान्त सुनाओ······ तुम्हारी वह—क्या नाम—विशाखा—कहाँ है ?

—आ-हा—क्या मुश्किल से नाम याद आया। यह नहीं कहते कि इतनी देर से उसी के बारे में पूछने का मौका ढूंढ़ रहे थे। विशाखा—जिसे तुमने उस दिन केलिकुंज में पटा लिया था—वही न ? उसका तो ब्याह हो चुका है—बच्चे हैं—

—तो वह बंध ही गयी उस चक्र में····

—तो क्या तुम्हारे लिये पलकें बिछाये बैठी रहती मेरी तरह ?—राधा ने चिढ़ कर कहा—तुम्हारे जैसे कपटी और धूर्त आदमी के लिये—

—और वह मनसुखा कहाँ है ?—कृष्ण ने हँस कर बीच में रोक दिया।

—मैं क्या जानूं ? शायद किसी पाठशाला में मास्टर है, और कुछ हो नहीं सका बिचारा। सुनते हैं दस-बारह बच्चे हैं उसके—

—दस—बारह ?—कृष्ण ने अचरज से आंखें फाड़ कर कहा—इतनी अधिक सन्तानें नहीं होना चाहिये थीं—

—जरा अपनी तरफ भी तो देखो—सोलह हजार एक सौ आठ कर के बैठे हो—तुम्हारे कितने बच्चे हैं, गिना है कभी ?

—वे सब मेरे नहीं हैं राधिके—

—हाय राम, तो फिर किसके हैं ?—राधिका ने चकित हो कर पूछा।

—तुम यहाँ आ कैसे गयीं पर ?—कृष्ण ने उत्तर न दे कर विषयान्तर कर दिया।

—हाँ, सारे इतिहासकारों और कवियों से लिखवा लोगे कि गोवर्धन तुमने उठाया था और सचाई को भूल जाओगे ? सब बात तुम्हें याद नहीं है ?

—फिर उसी शब्दजाल में भरमा रहे हो न ? मैं पूछती हूँ यह कैसा गणतंत्र है तुम्हारा, जो केवल तुम्हारी जोड़तोड़ पर टिका हुआ है, जो तुम्हारे हटते ही टूट जायगा। जो एक व्यक्ति पर टिका है, वह गणतंत्र हो सकता है भला ?

कृष्णप्रिया के ये नये चुटीले उलाहने, कृष्णकथा में पहली बार प्रतिष्ठित कहानीकार 'राधावल्लभ' की कलम से।—सम्पादक]

—कैसे आ गयी ? मेरे क्या पैर टूट गये हैं कि नहीं आ सकती ?

—नहीं, मेरा मतलब है—द्वार पर किसी ने तुम्हें रोका नहीं—मुझसे मिलने से लिये पहले मेरे कार्यसचिव को सूचना देनी पड़ती है—

मैं तो लुकछिप कर चली आयी। मैं किस-किस को सूचना देती बाबा ? न जाने कितनी तो ड्योढ़ियां है, हर एक पर द्वारपाल, किसी तरह पार कर के आ सकी। वृन्दावन में भी तो आती थी, बिना किसी को सूचना दिये तुम्हारे पास—कह कर राधा फिस्स से हंस दीं।

सुदामा तो बड़ी कठिनाई से आ सके थे यहां तक- कृष्ण ने कुछ गंभीर होते हुए कहा।

बातोंके तार जुड़े, तो घंटों बीत गये। उधर रुक्मिणी, सत्यभामा, जाम्बवती आदि अधीर होने लगीं। गणतंत्र के कई पदाधिकारी कृष्ण के दर्शन की प्रतीक्षा कर कर के वापस लौट चले। कृष्ण ने सबसे कहलवा दिया इस समय किसी से भेंट न हो सकेगी।

संकटकालीन स्थिति देख कर आठों पटरानियों ने एक विशेष बैठक बुला ली। सत्यभामा चिढ़ कर कह रहीं थीं-है कौन यह मरी ? सवेरे से आ धमकी। कलेवा तक नहीं करने दिया देवाधिदेव को—

रुक्मिणी ने कहा—हम लोगों को यह मामला गंभीरता से लेना चाहिये। कलेवे आदि की बात उठाने की आवश्यकता नहीं। मूल प्रश्न यह है कि वह अनधिकृत रूप से वासगृह में पहुंच कैसे गयी ? उसे किसने भीतर जाने दिया ? इसकी पूरी जांच होनी चाहिये। गणतंत्र के अधिकारी सबके सब भ्रष्ट हो गये हैं, नहीं तो ऐसा अवैध काम कैसे हो जाता।

सत्यभामा ने असहमति प्रकट करते हुए कहा-हम फिर मूल प्रश्न से भटक रहे है। प्रश्न यह नहीं है कि वह कैसे वहाँ पहुँची, प्रश्न यह है कि, उसके देवाधिदेव से मिलने का प्रयोजन क्या है ? इसके पीछे किसका षडयंत्र है, किसकी राजनीति है ?

जाम्बवती ने कहा—रुपया- पैसा माँगने आयी होगी और क्या ? इनके

मथुरा वृंदावन और उज्जयिनी के सब संगी साथी इसी लिए चले आते हैं' भुक्खड़ कहीं के। पहले भी ब्राह्मण आ धमका था, क्या नाम था उसका ?

—सुदामा....

—हां वही तो। हफ्तों जमा रहा, लाखों बटोर कर ले गया। अब यह....

मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह स्त्री रुपया बटोरने नहीं आयी है—रुक्मिणी ने अत्यन्त गंभीर होकर कहा।

—तो फिर किसलिये आयी है ?

यह राधा महाराज की सबसे प्रीतिपात्र गोपी थी। यह उन्हें वापस लेने आयी है, फिर से वृन्दावन....

—ऐसा कैसे हो सकता है ?—सोलह हजार एक सौ सात रानियाँ एक स्वर में बोल पड़ी।

—या तो यह उन्हें वापिस ले कर जायेगी, या यह यहीं रह जायेगी। दोनों ही स्थितियों में परिणाम भयंकर होंगे। यदि यह यहाँ रुकती है, तो महाराज का हमारे लिये रहना न रहना बराबर हो जायेगा। उनके लिये राधा ही होगी....

—यहाँ हमारी छाती पर मूँग दलेगी यह मरी...सत्यभामा ने जलेभुने स्वर में कहा।

सभा में कल कल मच गयी। रुक्मिणी ने सबको शान्त करते हुए कहा—उत्तेजित होने से काम नहीं चलेगा—अत्यन्त गंभीर परिस्थिति है। हमें संकट का साहस के साथ सामना करना है...

—तो तुम्हीं क्यों नहीं रह जातीं यहाँ ?—कृष्ण कुछ संकोच और कुछ अनुरोध के साथ कह रहे थे।

—मैं यहां रहूँगी ?—राधा ने तमक कर कहा—अभी तक तुम्हारा सब कुछ अपने पास रखने का अहंकार नहीं गया ? अपने इस राजपाट और महलों के भीतर मुझे भी बन्दी बना कर रखना चाहते हो ?

—बन्दी तो मैं स्वयं को अनुभव करने लगा हूँ राधिके, इस अटूट वैभव के बीच....

—तो छोड़ कर क्यों नहीं लौट चलते, वापिस वृन्दावन ?

—कैसे हो सकता है वापस लौटना ? यहाँ कौन संभालेगा इतना बड़ा गणतन्त्र....

—गणतन्त्र तो जनता चलाती है, उसे चलाने दो। तुमने इसे एकबार स्थापित किया, अब इसे अपनी गति से चलने दो।

यह नहीं हो सकेगा राधिके। मैं यहाँ से चला जाऊँ, तो सब टूट कर बिखर जायेगी—वरसों के परिश्रम से बनाई हुई व्यवस्था, जिसके लिये जीवन भर भागदौड़ की है मैंने। बहुत गुटबन्दी है इन लोगों में—वृष्णि और अंधक लोगों में। मेरे जाते ही आपस में लड़ लड़ कर मर जायेंगे ये।

—तो मरने दो उन्हें अपनी मौत। तुमने उन्हें बचाने का ठेका लिया है ?

—पर मेरे संपूर्ण आर्यावर्त में एक लोकतंत्र स्थापित करने के महान् स्वरूप का क्या होगा ? मैं चाहता हूँ गणों का यह अनुशासन....

—फिर वही बात ? अभी तक तुम्हारा सनकीपन नहीं गया-हर कुछ अपने ऊपर लेने का सनकीपन बचपन से तुम ऐसे ही तो थे। याद है गोवर्धन वाली बात ?

—नहीं, कुछ याद नहीं। बचपन की बातें कहाँ याद रह पाती है ? पर ठहरो, क्या कहा तुमने—गोवर्धन की बात ?....मेरे यहाँ एक पण्डित इतिहास रच रहे हैं उन्होंने मेरे बचपन की एक घटना का उल्लेख किया है उसमें गोवर्धन को उठाने की घटना का—

राधा ने तिरस्कार भरी हंसी हंस कर कहा—हाँ, सारे इतिहासकारों और कवियों से लिखवा लोगे कि गोवर्धन तुमने उठाया था, और सचाई को भूल जाओगे ? सच बात तुम्हें याद नहीं है ?

—नहीं राधा, सचमुच नहीं ...

—बृज में जब बाढ आयी थी, और सारे गाँव में पानी भर गया था और हम सब गोवर्धन पहाड़ पर आश्रय लेने पहुँचे थे। तुम सबसे आगे भागते हुए पहाड़ की सबसे ऊँची चोटी पर जा पहुंचे थे और चिल्ला चिल्ला कर कहने लगे थे—देखा, सब ओर पानी ही पानी है, जिसके बीच इस पहाड़ को ऊपर उठाये हुए हूँ मैं....

कृष्ण चुप हो कर सोचते रह गये। राधा ने फिर कहा—तुम सोचते हो, इतिहास की सहज धारा को मनचाही दिशा में मोड़ लोगे ? समूचा इतिहास बदल दोगे ? इतने साहसी थे, तो कालयवन से डर कर क्यों भागे थे तुम ?

भागा कहाँ था ? वृन्दावन से द्वारका चला आया था, गणतंत्र की नयी संभावनाओं को साकार करने ...

—फिर उसी शब्दजाल में भरमा रहे हो न ? मैं पूछती हूँ यह कैसा गणतंत्र है तुम्हारा, जो केवल तुम्हारी जोड़तोड़ पर टिका हुआ है, जो तुम्हारे हटते ही टूट जायेगा। जो एक व्यक्ति पर टिका है, वह गणतंत्र हो सकता है भला ?

—शायद तुम ठीक कह रही हो राधिके, पर....

—पर अब वापिस कैसे लौटूं यही न ? अब नहीं लौटोगे, तो फिर कब लौटोगे, बताओ ? कंस, शिशुपाल, जरासन्ध—इन सबको तुम समाप्त कर चुके, बिचारे कौरव-पांण्डवों को आपस में लड़वा कर मरवा डाला, तुम्हारे

राज में जो विद्रोही थे उन्हें भी कौरवों की तरफ से लड़वा कर नष्ट करवा दिया, अब और क्या शेष रहा बताओ ?

—यह इतना बड़ा गणतंत्र ।

—तुम क्या समझते हो, तुम इसे बचा लोगे ? अब तुम बूढ़े हो चले; तुम्हारे अनुशासन का दबदबा खतम हो गया है इन लोगों पर । तुम्हारे बाद ये लोग अपने स्वार्थों और गुटों में विजाजित हो कर आपस में लड़ लड़ मरेंगे ही । कुछ भी बचेगा नहीं कृष्ण—

—कोई काम व्यर्थ नहीं जाता राधिके । मैंने तिल तिल कर के गणतंत्र का यह प्रासाद खड़ा किया है द्वारका में । मेरे बाद यह ध्वस्त हो जायेगा, मैं जानता हूं । पर उस ध्वस्त अवशेष पर फिर नये सिरे से रचना होगी । रचना नष्ट हो जाने पर भी उसके पीछे की भावना बनी रहेगी, गीता के द्वारा जिसे मैंने अमर कर दिया है ।

--भावना की बुनियाद सही हो तब न । तुम्हारी उस गीता के एक एक श्लोक पर पण्डित लोग युग-युगों तक नोक-झोंक करते रहेंगे । तुम्हारा सारा जीवन और तुम्हारे द्वारा रचा इतिहास मनगढंत किस्से कहानियों की कुज्झटिका में छिप जायेगा । तुम गणतंत्र की स्थापना करने चले थे, पर लोग तुम पर सामन्तवादी होने का आरोप लगायेगें । तुम कर्मयोग और अनासक्ति का उपदेश देते रहे, लोग तुम्हें विलासी और पाखण्डी कहेगें....

फिर भी कुछ तो शेष रहेगा ही, जो मेरा अच्छा था ।

—हां, शेष वही रहेगा, जो तुम्हारा सचमुच अच्छा था ।

कृष्ण ने मंत्रमुग्ध की तरह राधा को निहारते हुए पूछा—क्या था वह ?

—वह जो तुम पीछे छोड़ आये हो । क्या तुम्हें नहीं लगता कि जिसे तुम व्याकुल हो कर खोजते रहे थे, वह तो वृन्दावन में ही छूट गया है । सारा वृन्दावन जब तुम्हें माथे पर बिठाये था, तब उसे क्यों छोड़ आये थे तुम ? क्या इसीलिये कि वहाँ ऐसी ऊँची अट्टालिकाएँ नहीं थीं, सामन्तों का स्वार्थ और कलह नहीं था, वहाँ का हर जन निर्भीक और स्वावलंबी था ।

—मैं उस वृन्दावन को सारे भारत में लाना चाहता था राधिके ।

—उससे दूर रह कर ? अपने आप से कट कर तुम कहाँ-कहाँ भागे, फिर और तुमने क्या पाया, यह तो बताओ ?

—शायद तुम ठीक हो, पर--

—अच्छा, छोड़ो यह सब । वह तुम्हारी वंशी कहाँ है ?

—वंशी ? हाँ, वंशी है न, संगीतशाला में रखी है ।

--भाड़ में जाये तुम्हारी संगीतशाला ।--राधा ने फिर चिढ़ कर कहा-- मैं तो वृन्दावन वाली वंशी की पूछ रही हूँ । सब भूल गये ? वंशी के सुरों में

प्राण फूंक कर जब तुम हमें पुकारते थे, और हम लोग खिचे आते थे तुम्हारे पास । तुम्हारे पास वे सुर अब हैं ?

--नहीं है राधा । मैंने उन्हें खो दिया, इन सारे झंझावातों के बीच । मैं घिर आया हूँ चारों ओर से । लो देखो, वे लोग आ गये....

सचमुच, उन्होंने कृष्ण के वासगृह को घेर लिया था । रुक्मिणी, सत्यभामा जाम्बवती आदि सभी उनमें थीं । हमारे गणतंत्र के अधिष्ठाता देवाधिदेव न्यस्त स्वार्थों वाले किसी व्यक्ति के वरगलाने में आ रहे हैं'—वे चिल्ला रहे थे--'उस व्यक्ति को दण्ड दिया जाय । उसे बाहर निकाल कर हमारे हवाले किया जाय ।'

राधा का मुख सफेद हो आया--जान कर ही आयी थी कि इस खतरे से जूझना होगा मुझे, तुम्हें लौटा लाने के प्रयास में । क्या अब भी नहीं चल सकते, तुम मुझे और खुद को इनसे बचाने के लिये ?

कृष्ण जड़ हो कर बैठे रहे—निस्पंद ।

रीडर, संस्कृत विभाग, सागर विश्वविद्यालय,

राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त /

स्व० डॉ० सेठ गोविन्द दास

हम कौन थे, क्या हो गये हैं, और क्या होंगे अभी।
आओ विचारें आज मिलकर ये समस्याएं सभी॥

इन समस्याओं पर विचार करने के लिए हिन्दी के द्विवेदी युग का वह महान् ग्रन्थ 'भारत-भारती', जब सन् १९१४ के लगभग प्रकाशित हुआ, तब मैंने सर्वप्रथम श्री मैथिलीशरण जी गुप्त का नाम सुना और पढ़ा। जिस प्रकार उस जमाने में इस ग्रन्थ ने न जाने कितने लोगों को इन समस्याओं पर विचार करने के लिए प्रेरणा देकर देशभक्ति के पथ में अग्रसर किया, उसी प्रकार मुझे भी। इसीलिए तो उस समय की अंग्रेज सरकार ने 'भारत-भारती' के अंतिम अंश को, जिसमें सोहनी द्वारा उद्बोधन दिया गया है, जब्त कर लिया था। उस समय बड़ी हलचल मची थी इसके कारण, और उस अंश के जब्त होने से वह अंश शायद सबसे अधिक पढ़ा जाता था, जैसा उस काल के हर जब्त किये गये साहित्य के संबंध में होता था। जब 'भारत-भारती' प्रकाशित हुआ, उन दिनों मैं युवावस्था में पहुँच गया था, क्योंकि इस देश में 'प्राप्तेपु षोड्षेवर्ष' के अनुसार सोलह वर्ष में ही व्यक्ति युवक हो जाता है और अठारह वर्ष में बालिग। मैं सन् १९१४ में अठारह वर्ष का था। उस समय मैं विद्यार्थी जीवन में था, जिसे आजकल इण्टर कहते हैं, वह उस काल में एफ० ए० कहलाता था। मेरा एफ० ए० का पाठ्यक्रम चल रहा था। मैं इतिहास विषय से अत्यधिक प्रेम करने वाला विद्यार्थी था। मुझे उस समय मिस्टर डिग्विट नाम के एक शिक्षक शिक्षा दे रहे थे। मैं कभी किसी स्कूल या कालिज में पढ़ने के लिए नहीं भेजा गया, क्योंकि मेरे दादा राजा गोकुलदास जी का मत था कि इन स्कूलों और कालेजों में लड़के बिगड़ जाते हैं। अतः घर पर ही मेरी उच्च से उच्च शिक्षा की व्यवस्था की गयी और अच्छे से अच्छे भारतीय तथा अंग्रेज शिक्षकों से मुझे एम० ए० के पाठ्यक्रम तक की शिक्षा दी एवं घर पर ही एक वशेष ढंग से परीक्षाएं लीं। मिस्टर डिग्विट ने आरम्भ में मुझे भारतीय इतिहास से संबंध रखने वाली लंदन से प्रकाशित कुछ पुस्तकें पढ़ने को दीं।

इन पुस्तकों का मेरे मन पर कुछ अच्छा असर नहीं पड़ा, परन्तु मैं तो अंग्रेजी राज्य का वफादार तथा अंग्रेजी सभ्यता में दक्ष व्यक्ति बनाया जाने वाला था, इसीलिए मुझे अंग्रेजी ढंग का नाच 'स्केटिंग' आदि भी सिखाया जाता था। उपर्युक्त ऐतिहासिक पुस्तकें भी इसी कार्यक्रम का एक अंग थीं। मेरे निर्माण की उस योजना में 'भारत-भारती' ने एक विस्फोट कर दिया और वहीं से यथार्थ में मेरे जीवन की दिशा बदली।

['चिरगांव जैसे देहाती स्थान में निवास का उनकी आकृति और पोशाक दोनों पर स्पष्ट प्रभाव था। बुन्देलखन्ड में इस प्रकार के लोगों के लिये एक विशेष शब्द का प्रयोग होता है, वह शब्द है--'खिरैयां'। गुप्त जी को भी इस शब्द से विभूषित किया जा सकता था।' एक बुन्देलखन्डी द्वारा दूसरे बुन्देलखन्डी का हूबहू रेखांकन, साकेतवासी होने के कुछ दिनों पूर्व लिखा सेठ जी का एक दुर्लभ चित्र। —सम्पादक]

जिस ग्रंथ ने मेरे जीवन पर इतना अधिक प्रभाव डाला, उसके रचयिता के दर्शन की इच्छा एक स्वाभाविक इच्छा थी। उसके पूर्ण होने में भी बहुत विलम्ब नहीं लगा, क्योंकि सन् १९१५ में ही श्री मैथिलीशरण गुप्त जी गहोई वैश्य सभा के सभापति के रूप में जबलपुर पधारे। मुझे गुप्त जी की उस समय की आकृति और पोशाक का अब तक वैसा का वैसा स्मरण है। वे उस समय लगभग ३० वर्ष के थे। गेहुँए रंग का कुछ ऊँचा और दुबला शरीर, आनन पर बड़ी-बड़ी मूँछें, ललाट पर रामानंदी तिलक। सिर पर वे बुंदेलखण्डी पगड़ी बाँधते थे, शरीर पर अंगरखा और धोती पहनते थे। अंगरखे पर दुपट्टा रहता था। चिरगांव जैसे देहाती स्थान में निवास का उनकी आकृति और पोशाक दोनों पर स्पष्ट प्रभाव था। बुन्देलखण्ड में इस प्रकार के लोगों के लिए एक विशेष शब्द का प्रयोग होता है, वह शब्द है—'खिरैयां। गुप्त जी को भी इस शब्द से विभूषित किया जा सकता था। फिर जैसी सीधी-साधी उनकी वाह्य आकृति थी, वैसा ही सीधा-सादा उनका अंतरंग भी था, जो उस समय उनकी बातचीत के ढंग से मालूम हुए बिना नहीं रहता था। गुप्त जी का यह वाह्य और आन्तरिक सीधापन तथा सादापन उनके जीवन के अंतिम समय तक जैसा का तैसा मौजूद रहा।

जिस समय मैथिलीशरण गुप्त जी जबलपुर आये, उस समय मैं 'शारदा भवन' नामक एक पुस्तकालय चला रहा था। जबलपुर में यह माना जाता है कि जबलपुर का आधुनिक सार्वजनिक जीवन इसी पुस्तकालय के चारों ओर विकसित हुआ। मुझे स्मरण है कि गुप्त जी ने इस छोटे से पुस्तकालय में भी

पधारने की कृपा की थी और वहां उन्होंने उस पुस्तकालय के संबंध में, जो कुछ कहा था, उससे इसकी भावी उन्नति में बहुत सहायता पहुँची थी। उसके बाद ही सन् १९१६ में मैंने एक महाकाव्य लिखा। यह बाणासुर की पौराणिक कथा पर था। इसे मैंने गुप्त जी को देखने के लिए भेजा था और उन्होंने बड़ा परिश्रम कर उसे ध्यान पूर्वक देख उसके संबंध में मुझे कई महत्वपूर्ण सुझाव भी दिये।

मैथिलीशरण जी हिन्दी के उन कवियों में प्रथम कहे जा सकते हैं, जिन्होंने खड़ी बोली में हिन्दी कविता को जन्म दिया और उसे परिष्कृत किया। फिर वे भारतीय संस्कृति के पूजक कवि थे। साथ ही राष्ट्रीय कवि भी, और इसीलिए उनको जो राष्ट्रकवि की उपाधि से विभूषित किया गया, वह सर्वथा उचित था। वे रामभक्त थे, परंतु उन्होंने सिख गुरुओं पर भी काव्य लिखा है, जिसका यह अर्थ है कि उनमें धार्मिक संकीर्णता नहीं थी, वरन उदारता थी। वे प्रधानतया प्रबंध काव्यों के रचयिता हैं। जिस समय 'भारत-भारती' प्रकाशित हुई, उस समय कुछ लोगों का मत था कि वह केवल तुकबंदी है, काव्य के गुणों से रहित। एक तो मैं इस मत से ही सहमत नहीं, क्योंकि मैं उस स्कूल का ही नहीं हूँ, जो कला को कला के लिए ही मानने वाला है। मैं तो कला को जीवन के लिए मानने वाला व्यक्ति हूँ और 'भारत-भारती' ने अपने समय में कम से कम हिन्दी भाषा-भाषियों के जीवन में जो एक नयी प्रेरणा दी, वह उस काल के किसी काव्य ने नहीं दी। दूसरे, श्री गुप्त जी ने अकेला 'भारत-भारती' काव्य ही तो नहीं लिखा। 'भारत-भारती' के पहले उनके दो काव्य और प्रकाशित हो चुके थे—'रंग में भंग' एवं 'जयद्रथवध' और उसके बाद भी 'साकेत' आदि अनेक प्रबंधकाव्य प्रकाशित हुए। मेरे मत से हिन्दी के इस काल के वे सबसे बड़े प्रबंध काव्यों के रचयिता थे। उन्होने 'तिलोत्तमा' 'चन्द्रहास' आदि कुछ नाटक भी लिखे हैं, परन्तु नाटककार की दृष्टि से वे सर्वथा असफल हुए। बहुत अच्छा हुआ, जो वे इस क्षेत्र में और आगे नहीं बढ़े। गुप्त जी ने माइकेल मधुसूदन दत्त के 'मेघनाथ-वध', 'विरहिणी वृजांगना' आदि का 'मधु' नाम से अनुवाद भी किया है और ये अनुवाद सुन्दर बन पड़े हैं।

गुप्त जी उन व्यक्तियों में नहीं थे, जो केवल विचार ही विचार में देशभक्त रहते हैं, पर विचार के अनुसार उनकी कोई कृति नहीं होती। भारतीय स्वातंत्र संग्राम में भी गुप्त जी ने भाग लिया है और जेल को भी सुशोभित किया है, परंतु गुप्त जी एकांत जीवन के अनुरागी थे। सार्वजनिक सभाओं, जुलूसों आदि से वे बहुत दूर रहना पसंद करते थे इसीलिए अनेक बार प्रयत्न होने पर भी उन्होंने हिन्दी साहित्य-सम्मेलन जैसी साहित्यिक संस्था का भी

सभापति होना स्वीकार नहीं किया।

यों तो उनसे मेरा सन् १९१५ से ही संबंध रहा और मैं उनका बड़ा कृपापात्र एवं स्नेह भाजन भी रहा, परंतु जब से राष्ट्रपति ने उन्हें राज्य सभा में नामजद किया, तब से तो उनका और मेरा नित्य प्रति का ही संबंध हो गया था। जब वे राज्यसभा के सदस्य के रूप में दिल्ली रहते, मैं प्रायः उनसे मिलता रहता। उनके स्वभाव में तो कोई परिवर्तन नहीं हुआ था, परंतु आकृति और पोशाक अब अवश्य बदल गई थी। शरीर भी कुछ भर गया था और आनन मूँछों से रहित हो गया था। ललाट का रामानंदी तिलक भी अब नहीं था। पगड़ी की जगह गांधी टोपी आ गयी था और कुरते के ऊपर का अंगरखा उड़ गया था। उनके ये परिवर्तन मेरी दृष्टि में और अधिक इसलिए आते हैं, क्योंकि मुझमें भी प्रायः ये सारे परिवर्तन हुए हैं। पहले मैं भी बड़ी-बड़ी मूँछें रखता था, मेरी मूंछें चली गई। मैं भी वल्लभ संप्रदाय का तिलक लगाता था, जो अब नहीं लगाता। सिर पर मेरे भी पगड़ी रहती थी, उसकी जगह टोपी आ गई और कुरते के ऊपर मेरा भी कोट चला गया। परंतु इन परिवर्तनों का कोई प्रभाव हमलोगों की भावनाओं पर नहीं पड़ा। इन परिवर्तनों के बावजूद भी गुप्त जी की धार्मिक और सांस्कृतिक भावनाएँ उनमें वैसी ही बनीं रहीं, जैसी पहले थीं। मेरी भी इस संबंध में वही स्थिति है।

गुप्त जी के राज्य सभा में आने के बाद मुझे मालुम हुआ कि वे घर में 'दद्दा' कहे जाते हैं। उनके समीपवर्ती भी उन्हें इसी नाम से संबोधित करते हैं। जिस प्रकार बुन्देलखण्ड के 'खिरैयाँ' शब्द की ऊपर व्याख्या हो चुकी है, उसी प्रकार बुन्देलखण्ड में दद्दा, कक्का, बब्बा, शब्द भी बड़ों के लिए प्रयुक्त होते हैं। मैं भी तो बुन्देलखण्ड का ही रहने वाला हूँ। हमारे घर में भी दद्दा, कक्का और बब्बा का ही प्रयोग होता है। मैं अपने पिता जी को कक्का साहब कहता था। मेरे बच्चे मुझे कक्का साहब कहते हैं। मैं भी अब गुप्त जी को दद्दा कहने लगा था। मैं तो यह मानता रहा कि वे हम लोगों के ही दद्दा नहीं थे वरन् आधुनिक खड़ी बोली की कविता के और खड़ी बोली की कविता करने वाले अपने नातेदारों तथा साथियों के भी 'दद्दा' थे। उनके अनुज सियारामशरण जी गुप्त एवं अजमेरी जी इसके दृष्टान्त हैं।

मुझे सदा हर पग पर ज्ञात होता रहा कि यह सीधा-सादा दिखने वाला सर्वथा निरभिमानी राष्ट्रभाषा का पुजारी और राष्ट्रभक्त मानवता की दृष्टि से कितना महान रहा। हिन्दी के आधुनिक महाकवि और राष्ट्रकवि के रूप में मैथिलीशरण जी का नाम देश के इतिहास में सदा अजर-अमर रहेगा।

दो ऋतुगीत /

संकलन : आशाराम त्रिपाठी

[प्रस्तुत स्तम्भ में दो लोकगीत संकलित, इस आमंत्रण के साथ कि लुप्त होते दुर्लभ लोकगीतों को विद्वान और गायक सभी प्रकाशन हेतु भेजने का कष्ट करें। प्रयत्न करने पर भी स्वर-लिपि नहीं दे सके, इस क्षेत्र के संगीतज्ञ यदि गीत के साथ स्वर-लिपि या गीत देने पर स्वर-लिपि बनाकर दें, तो मातृभूमि और मातृभाषा की उनकी सेवा स्मरणीय रहेगी। लोक-प्रचलित लयों पर आधारित स्वर-लिपि ही स्वीकार्य होगी। —सम्पादक]

बदरी बरसौ बिरन के देसा में। टेक।

कँहना सें उनई रे कारी बदरिया, कँहना बरस गये मेह,
अगम सें उनई है कारी बदरिया, पच्छिम बरस गये मेह।
किनकीं हो भर गईं ताल-तलैयां, किनके भरे सागर-ताल,
ससुरा कीं भरगईं ताल-तलैयां, बिरना के भरे सागरताल।
किनके निकरे हरला-बखरला, किनकी कड़ी हरसोट,
ससुरा के निकरे हैं हरला-बखरला, बिरना की कड़ी हरसोट।
किनकी बिन गईं लटक-कंकुनियां, किनकी की सटिया धान,
ससुरा की बिन गईं लटक कंकुनियां, बिरना की सटिया धान।
किनके नींदें घर के निदैया, किनके नींदें मजूर,
ससुरा के नींदें घर के निदैया, बिरना के नींदें मजूर।
किनकीं कट गईं लटक कंकुनियां, किन की कट गई धान,
ससुरा की कट गईं लटक कंकुनियां, बिरना की कट गई धान।
कै मन गा लई लटक कंकुनियां, कै मन सटिया धान,
नौ मन गा लई लटक कंकुनियां, दस मन सटिया धान।

वेला के चलाये कब हुइयें, कब अइहें राजा परमाल। टेक।
सावन कजरिया ना देखी, न देखी चंदेलन फाग।
नगर महोबो ना देखो, न देखो किरुतुआ ताल।
सोनै धिनौची ना देखी, न देखी चंदन चौपार।
घोड़ा बिंदुलिया ना देखे, न देखे ऊदल असवार।
सास चंदेलन ना देखी न देखे ससुर परमाल।
वेला के चलाये कब हुइयें, कब अइहें राजा परमाल॥

बुन्देली लोकसंगीत /

प्यारेलाल श्रीमाल

['बुन्देली लोकसंगीत बहुत ही समृद्ध है। उसके लिये पर्याप्त शोध की आवश्यकता है। यहाँ के लोकजीवन ने संगीत के तीनों अंगों—गीत, वाद्य और नृत्य को समान रूप से अंगीकार किया है। उसने फागें, दादरे, कहरवे, राई आदि गा-गाकर तथा नाच-नाचकर इस भूमि के कण-कण को संगीत-सुधा से सींच दिया है।' ऐसे बुन्देली लोकसंगीत पर संगीत के पाण्डित श्री प्यारेलाल श्रीमाल का शोधपूर्ण लेख। सम्पादक]

'लोक' शब्द प्राचीन भारतीय वाङ्मय में प्रयुक्त हुआ है। वेद, उपनिषद तथा गीता में इसका बहुलता से प्रयोग मिलता है।[1] किन्तु धार्मिक ग्रन्थों में प्रयोग हुआ है जड़ अर्थों में, जबकि साहित्य एवं कला के सन्दर्भ में 'लोक' शब्द से तात्पर्य उस मानव समाज से है, जो अभिजात्य एवं शास्त्रविद् समाज से पृथक अपनी परम्पराओं तथा संस्कारों को लिये हुए जी रहा है। ऐसे मानव समाज द्वारा व्यवहृत परम्परागत संगीत को 'लोक संगीत' की संज्ञा दी जाती है। दूसरे शब्दों में—लोक मानव की स्वर-लयात्मक अभिव्यक्ति लोक संगीत है। 'सामान्य लोकजीवन की पार्श्वभूमि में अचिन्त्यरूप से अनायास ही फूट पड़ने वाली मनोभावों की लयात्मक अभिव्यक्ति लोकगीत कहलाती है।'[2] पेरी के अनुसार लोकगीत मानव का उल्लासमय संगीत है।

१—नाभ्या आसीदृंतरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत
पद्भ्यां भूमिदिशः श्रोत्रान्तथा लोकां अकल्पयन। —ऋग्वेद पुरूष सूक्त

बहु व्याहितो वा अयं बहुतो लोकः
क एतद् अस्य पुनरहितो अयात्। जैमिनीय उपनिषद ब्राम्हण ३/२८

गुरूनहत्वा हि महानुभावान् श्रेयोभोक्तुंमेक्षमपीह लोके। ५/२ गीता
लोके अस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयनघ। ३-३ गीता

२—मालवी लोकगीत एक विवेचनात्मक अध्ययन : डा० चिन्तामणि उपाध्याय

मानव आदिम काल से जीवन में संगीत का प्रयोग करता चला आ रहा है। ऋग्वेद की ऋचाएँ गाई जाती थी। ऋग्वेद में गायक के लिये 'गाथिन' शब्द का प्रयोग किया गया है तथा विवाहोत्सव आदि अवसर के गीतों को रेभी, नाराशंसी तथा गाथा आदि नाम दिया है। ये गाथाएँ ऋचाओं की भाँति ही छन्दोबद्ध है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी वेद तथा लोकगीत दोनों को ही श्रुति मानते हैं। श्रीमद्भागवत में प्रयुक्त गाथाएँ विवाह, यज्ञ आदि अवसरों पर गाई जाती थी। रामजन्म के अवसर पर गाये जाने वाले लोक-गीतों का महर्षि वाल्मीकि ने उल्लेख किया है। इसी प्रकार सम्राट हर्ष ने भी अपने 'नैषध चरित' में स्त्रियों द्वारा गाये जाने वाले मधुर गीतों का उल्लेख किया है। अतः यह स्पष्ट है कि लोकसंगीत की कल्याणकारी धारा अति प्राचीन काल से सुरसरि की भाँति जनमानस को स्वरामृत का पान कराती हुई प्रवहमान है। सदियों से जलधारा में बहते आते पाषाण घिस कर सुन्दर एवं स्निग्ध बन जाते हैं। कुछ तो उनमें शंकर का रूप धारण कर लेते हैं। उनमें चुभने वाले तीखे कोर-कोने नहीं होते। उसी प्रकार परम्परा से लोक-मानस पर लोट लगाते आते लोकगीतों के शब्द एवं स्वर भी इतने श्रुतिमधुर एवं मार्मिक बन जाते हैं कि उनमें तनिक भी ऐसा तीखापन या नुकीलापन नहीं रह जाता, जो किसी सहृदय की सुकोमल भावनाओं को खुरच दे। जल-धारा में बहने वाले ऐसे पाषाणों पर बारीक नक्काशी मिलना सम्भव नहीं होता, प्रकृति सीधासादा उनका नैसर्गिक रूप होता है, उसी प्रकार लोकगीतों के शब्दो एवं स्वरों में भी किसी प्रकार की कृत्रिमता अथवा आलंकारिकता का अभाव ही मिलेगा। मिलेगी उनमें मानवीय संवेदनाओं की वह नग्न एवं स्वाभाविक अभिव्यक्ति, जो अन्यत्र दुर्लभ है।' लोकगीत हृदय की वाणी होने के साथ-साथ समाज की चेतना और अनुभूति पर आधारित हैं, जिसमें बुद्धि की अपेक्षा परम्परा का प्राधान्य होता है। इसीलिये लोकगीतों में कला-पक्ष का वह रूप नहीं मिलता, जो कलात्मक साहित्य में दृष्टिगोचर होता है।'[१] यही बात लोकसंगीत के बारे में भी कही जा सकती है।

रति एवं भय मानव के दो जन्मजात मूल भाव है, जिनके कारण उसमें आनन्द एवं आत्मरक्षा की भावना का उद्रेक हुआ है। अतः मानव ने उन स्वरावलियों को ग्रहण किया, जो मनोरंजन, श्रम-परिहार तथा चिन्ता-मुक्ति में सहायक बनी।' Folk song is the active expression of a group that sings or plays for pleasure or to help itself along the road to happiness and freedom by making work easier, filling spare

१—वृज और बुन्देली लोकगीतों में कृष्ण-कथा

time, relating happiness and praising and protesting those happenings. It is likely to deal with homely everyday events that may laud some love or recial hero.[1] परम्परागत संगीत ही लोकसंगीत है, सो बात नहीं। नवनिर्मित स्वरावली भी लोकसंगीत की श्रेणी में आ जाती है, जब वह लोकसंगीत का समतल पाकर लोकजीवन में ग्रहण करली जाती है।

भारतवर्ष ग्रामों का देश है। प्रत्येक प्रान्त में लोकगीत गाये जाते हैं, किन्तु बुंदेलखण्ड लोकगीतों का अक्षय भण्डार है। इसके मूल कारण हैं वहां की नैसर्गिक छटा, वीरोचित इतिहास तथा आध्यात्मिक चेतना। विन्ध्याचल की शृंखलाबद्ध रमणीय पर्वतमालाओं ने, यमुना, नर्मदा, चम्बल-तटीय सघन बन-कुंजों ने; तथा वीरवर आल्हा-ऊदल, छत्रसाल, दुर्गावती, लक्ष्मीबाई की गौरव गाथाओं ने जहाँ वाल्मीकि, तुलसी, केशव, बिहारी, पद्माकर, भूषण जैसे महाकवियों को अवतरित किया, वहां समस्त बुन्देलखण्ड प्रदेश को संगीतमय बना दिया है। पतित-पावन भगवान रामचन्द्र तथा कृष्णचन्द्र, की लीलाओं का गुणगान करते वहाँ का लोकजीवन कभी नहीं अघाता। लोकजीवन के समस्त संस्कारों में राम और कृष्ण ऐसे रम गये हैं कि उन्हें विलग नहीं किया जा सकता। लोकजीवन के प्रत्येक क्रिया-कलाप में वे प्रतीकरूप बन गये हैं।

लोकगीत के तीन अंग होते हैं—भाव, शब्द एवं स्वर। भाव उसका अन्तरंग है, जबकि शब्द और स्वर बहिरंग। लोकसंगीतों में शब्द और स्वर इस प्रकार अन्योन्याश्रित होते हैं कि एक को पृथक करने पर दूसरा पंगु हो जाता है। इस कारण प्रायः लोकगीत-रचयिता कवि भी होते हैं और गायक भी। दूसरे शब्दों में—लोकगीत का जितना मूल्य साहित्यिक दृष्टि से है, उससे कम सांगीतिक दृष्टि से नहीं।

हिन्दुओं का सामाजिक जीवन प्रारम्भ से संगीतमय रहा है। उसके प्रत्येक मंगलकार्य में संगीत को मुख्य स्थान दिया गया है। जन्म से लेकर मरण तक सभी संस्कारों के साथ उसका अविच्छिन्न सम्बन्ध है। त्यौहारों की तो बात ही क्या, कोई घर, कोई वन, कोई खेत और कोई नदी-तट ऐसा न मिलेगा जो कभी गीतों की तान से गूंज न उठा हो।[२] बुन्देलखण्ड के लोकगीतों का संगीत पक्ष अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण लोकगीत मय होता है तथा वह गाकर ही प्रयोग में लाया जाता है। बुन्देली लोकगीतों को मुख्यतः छः भागों में विभक्त किया जाता है: १. धार्मिक २. औत्सविक ३. सामाजिक ४. सामयिक ५. ऐतिहासिक तथा ६. विविध।

१—धार्मिक गीत—इसमें भजन, भगतें, भोला के गीत, कातिक के गीत,

1. International Press Philadelphia Toronto Vol. VI page 1270
२. बुन्देलखण्डी लोकगीत : श्री शिवसहाय चतुर्वेदी

गोटें, लावा के गीत, नौरता, रमैटता तथा अन्य देवी-देवताओं के गीत सम्मिलित किये जाते हैं।

२—औत्सविक गीत—शास्त्रविहित सोलह संस्कारों में जन्म, विवाह और मृत्यु ही प्रमुख संस्कार हैं। बालक के गर्भ में आने से लेकर मृत्युपर्यन्त बुन्देलखण्डी लोकजीवन के चौराहों पर संगीत का मेला लगा हुआ है। संचत, सोहर, बधाये, लोरी, सरिया, कुआ-पूजन, झूला, बनरा, गारी आदि की धूम मची हुई है।

३—सामाजिक गीत—गड़रियाऊ, बीरा, कछयाऊ, निराई, ख्याल, दोहरा धुबयाऊ, दिवारी, राई, बिलवाई, कहरवा, दादरे लहचारी आदि सामाजिक गीतों की श्रेणी में आते हैं। धोबयाऊ गीत में धोबी-धोबिन का हास-परिहास रहता है। कहार, जिन्हें बुन्देलखण्ड में धीमर कहा जाता है, कहरवा, दादरा तथा लहचारी गाते हैं। दीवाली के समय अहीरों के द्वारा कार्तिक के महीने में दिवारी गीत खूब गाया जाता है। कृषक कृषिकार्यों में जुताई, बुवाई, निराई, कटाई, मड़ाई करने की विभिन्न क्रियाएँ होती हैं। इन्हीं अवसरों पर वह अपनी थकान मिटाने के लिये विविध प्रकार के गीतों का आश्रय लेता है। खेतों से चारा निकालने की क्रिया को निराई कहते हैं। अतः इस अवसर के गीत को निराई गीत कहा जाता है। प्रातः काल चक्की पीसते हुए महिलाएँ, जो गीत गाती हैं, उसे बिलवाई गीत कहा जाता है। राई बुन्देलखण्ड का अति लोकप्रिय नृत्यगीत है, जिसका आगे उल्लेख किया जावेगा।

४—सामयिक गीत—मल्हारें, सैरें, फागें, बारहमासा, राछरे, हिंडोला, कजली, लेदें, खिरें, रावला, स्वांग, दिनरी, अछरी, होली, रसिया, माउदी, सावन, बनजारा आदि सामयिक गीत हैं। फागें छः प्रकार की गाई जाती हैं। सखियाऊ, डिड़खुरयाऊ, चौकड़ियाऊ, छन्दयाऊ, खड़ी फागें और ढहका की फागें, वर्षा और वसन्त इन दोनों ही ऋतुओं में प्रकृति शृंगार करती है। दोनों ही उल्लास की ऋतुएँ हैं, इसी कारण सामयिक लोकगीतों की बहुलता पाई जाती है।

५—ऐतिहासिक—आल्हा, ढोलामारू, रासे और चौपाइयां ऐतिहासिक गीत हैं। ये वीररस-प्रधान होते हैं। कड़खा भी वीररस-प्रधान गीत है।

६—विविध—गाथाएँ, बच्चों के गीत आदि।

लोकधुनें ही शास्त्रीय संगीत का मूलाधार हैं। 'राग बनाये नहीं जाते। हम लोकधुनों में रागों को छुपा हुआ पाते हैं। उन्हें पकड़ कर जब प्रकट कर देते हैं, तो शास्त्रीय पक्ष सामने आ जाता है। लोकधुनें निसर्ग निर्मित हैं, इसलिये निसर्ग की तरह वे पूर्ण होते हैं।'[1] असंख्य मिश्रित धुनें

१—भारतीय संगीत का मूलाधार लोक संगीत—श्री कुमार गन्धर्व
सम्मेलन पत्रिका लोक संस्कृति अंक २०१०

लोकगीतों में चिरकाल से चली आ रही हैं। भैरव, बिलावल, खमाज और काफी के स्वरों वाले लोकगीत बहुतायत से मिलते हैं। फिर भी उनमें रागों की शास्त्रीयता के बन्धन को स्वीकार नहीं किया गया है। हम बहुत से बेसुरे रागों को शास्त्रीयता के जाल से बचा कर प्रकृति के मुक्त स्वरों के निकट पहुँच सकते हैं। लोकधुनों के माधुर्य ने आधुनिक हिन्दी कवियों को भी प्रभावित किया है।'[1] अधिकांश लोकगीतों में तीन, चार या पांच स्वरों का ही प्रयोग किया जाता है तथा वे सप्तक के पूर्वाङ्ग में ही गाये जाते हैं। भजन, ख्याल, दादरा, फाग आदि नाम उन धुनों के हैं, जिनमें गायक लोग गीतों को पलट कर भी गा लेते हैं। अयोध्याप्रसाद नामक गायक ने मुझे एक भजन सुनाया, फिर उसे दूसरी धुन में गाकर कहा—'यह फाग है, और फिर तीसरी धुन में गाकर कहा—'यह ख्याल है।' इससे मुझे पता चला कि जिस गीत में होली का वर्णन है, वही फाग नहीं, वरन् गीतों के ये विभिन्न नाम उनकी निश्चित धुनों से भी सम्बन्ध रखते हैं।

उपरिनिर्दिष्ट गीतों में सोहर, बधाये, बिलवाई, कार्तिक आदि के गीत ऐसे हैं, जिन्हें महिलाएँ ही गाती हैं। यद्यपि समूचे गीत लय और ताल में निबद्ध होते हैं, किन्तु महिलाओं के गीतों में वाद्यों का सहयोग अपेक्षित नहीं रहता। पुरुष मण्डलियों द्वारा गाये जाने वाले गीतों के साथ नाना प्रकार के वाद्य बजाये जाते हैं। तत, वितत, सुषिर और घन चारों प्रकार के वाद्यों का प्रयोग मिलता है, जिनमें एकतारा, सारंगी, केंकड़िया, कसावरी, अलगोजा, बन्सी, ढोलक, नगड़िया, झांझ, झींका, मंजीरा, करताल, चंग, डफ, मृदंग, खंजरी आदि प्रमुख हैं।' लोक वाद्यों में सुलभता सर्वत्र व्याप्त है। इनकी उपलब्धि के लिये हमें विशेष प्रयत्नशील नहीं होना पड़ता है। लोकजीवन की परिधि में यत्र तत्र फैले हुए पदार्थ लोक वाद्यों के रूप में प्रयुक्त होते हुए देखे गये हैं। भिक्षुक दो लकड़ियों की चपटी बजाकर अपने भिक्षा-गीत को सरस बना लेते हैं। धोबी समाज में सूप और गागर आदि बजाई जाती है और इनसे समुत्पन्न स्वरलहरी बड़ी भली लगती है। पारसी लोग एक लम्बा बाँस बजाते हैं, जबकि अहीर दो लम्बी छड़ियों को बजाकर अपने दिवारी नृत्य को अधिक संगीतमय एवं आकर्षक बना लेते हैं। चमारों के नृत्य में ढोलक के साथ कटोरों को भी बजाया जाता है। कहीं-कहीं पर कुम्हार लोग मटके भी बजाते हैं।'[2]

१—प्रयोगवादी काव्य में लोक गीतों की अभिव्यक्ति—श्री सर्वेश्वरदयाल
सम्मेलन पत्रिका लोक संस्कृति अंक २०१०

२—बुन्देलखण्ड के लोकवाद्य : प्रो० श्रीचन्द्र जैन

प्रेम तथा शृंगार के लोकगीत मध्य एवं द्रुत लय वाली कहरवा, दादरा, खेमटा आदि तालों पर तथा करुण गीत बिलम्बित लय वाली दीपचन्दी ताल पर आधारित है। वैसे त्रिताल, झपताल आदि तालों पर आधारित गीत भी उपलब्ध हैं। कहरवा और दादरा बुन्देलखण्ड के कहारों की अति प्रिय तालें हैं। मुझे लगता है कि इस मनहर ताल का नाम 'कहरवा' कहारों के कारण ही पड़ा है और दादरा ताल का नामकरण वाद्यों के निकलने वाले अक्षरों से ही बन गया है। अति लोकप्रियता के कारण इनमें गाये जाने वाले गीत भी इन्हीं के नाम से प्रख्यात हो गये। अधिकांश फिल्मी गीत भी इन पर ही आधारित मिलेंगे। दादरा नृत्यगीत भी है, जिसमें केवल स्त्रियां ही भाग लेती हैं। बुन्देलखण्डी दादरे भारत भर में प्रसिद्ध हैं। इनका साहित्य भी अत्यन्त ललित एवं सरल होता है। उदाहरण देखिये :—

दादरा

पिया छाये परदेस जियरा डगामग डोले
कछु भेजे न संदेस जियरा ....

मन की बिथा सखि कासें सुनाऊँ
मन में आवत जोग रमाऊँ, अब तो भावै नहिं देस। जियरा........

तुमरे बिना जियरा मानत नाहीं
जाय बसे पिया कौनें जग माहीं, आओ देखौ मोरी भेस। जियरा.... .
एहो पिया अब कैसी करूँ मैं
कौन उपाय सें धीर धरूँ मैं, रूपा हो गये कैस। जियरा. . . . . .

म ग —
पि या ऽ

स्थायी

×	०	×	०
म प —	पप मपधनि ध	ध ध प	— म ग
छा ये ऽ	पर दे ऽऽऽ स	जि य रा	ऽ ड गा
ग म प	ध — प	म — —	म ग —
ऽ म ग	डो ऽ ले	ऽ ऽ ऽ	पि या ऽ

अन्तरा

प प नी	—नि सां —	सांसां सां —	सां सां —
म न की	ऽवि था ऽ	सखि का ऽ	सें मु ऽ
रें सां —	नी — प	म — —	म ग —
ना ऽ ऽ	ऊँ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	पि या ऽ

बुन्देलखण्ड में पुत्र-जन्म के समय स्त्रियाँ दादरा ताल में निबद्ध मधुरला गीत गाती हैं, जो इस प्रकार है :—

सुभ अवसर कौ दिन आज मधुरला बाजै मधुर सुहावनी ॥
गौआ की गौंबर मंगाइयौ और ढिग धर आँगन लिपाओ ॥ मधुरला ...
मुतियन चोक पुराइयौ और कंचन कलस धराओ ॥ मधुरला .. ....
बैठी यशोदा रानी चौक में मन मन मोहन कंठ लगाओ ॥ मधुरला....

×	०	×	०
सा सा रे	रे म म	प प ध	म म म
सु भ अ	व स र	कौ ऽ दि	न आ ऽ
— प ध	ध नि नि	ध ध प	— प —
ऽ ज म	धु ऽ र	ला ऽ वा	ऽ जै ऽ
म म प	प — म	— ग रे	सा — —
म धु र	सु ऽ हा	ऽ व नो	ऽ ऽ ऽ

नोट : इसी प्रकार सम्पूर्ण गीत गाया जाता है ?[१]

लोक गीतों में स्वर और ताल का प्रयोग सर्वथा भावानुकूल मिलता है। भाव की रक्षा के लिये गायक भले ही एक बार शब्दों में तोड़ मरोड़ कर लेता है, किन्तु स्वर और ताल के सम्बन्ध में वह पूर्ण संयम से काम लेता है। भिन्न प्रकार के गीतों के साथ भिन्न प्रकार के वाद्यों का प्रयोग भी भाव-सृष्टि के अनुकूल ही मिलता है। उदाहरण के लिये फाग की मस्ती और मादकता में जहाँ नगड़िया सहायक होती है, वहाँ भजन की तन्मयता में बाधक होने के कारण वर्जित है। फाग में हारमोनियम काम में नहीं ली

१—बुन्देलखण्डी संगीत : पं० कृष्णकुमार शास्त्री
विन्ध्यभूमि अंक दिसम्बर १९४९

जाती, जब कि भजन में उसका उपयोग किया जाता है, इसका भी यही कारण है।

सामवेद तीन स्वरों में निबद्ध था—उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। बुन्देलखण्ड में भी कई लोकगीत उपलब्ध हैं, जो तीन स्वरों में गाये जाते हैं और ऐसा समां बांधते हैं कि सुनने वाला चित्रलिखित-सा रह जाता है। यह बात नहीं है कि इन तीन स्वरों वाले लोक गीतों को सामवेद की तरह गाया जाता है, वरन् इनकी अपनी लोकरुचि के अनुकूल स्वतन्त्र धुनें हैं। उदाहरण के लिये एक भजन प्रस्तुत है, जिसमें नि, सा, रे केवल इन तीन ही स्वरों का प्रयोग स्थायी एवं अन्तरे में हुआ है :—

भजन

शंकर भोलेनाथ परबत पै बगिया लगाइयौ।
कौना लगाई तोरी बेला चमेली, कौना ने अनार। परबत····
माली लगाई तोरी बेला चमेली, मालन ने अनार। परबत····
काय कै सींसो तोरी बेला चमेली, काय को अनार। परबत ···
दुदुवन से सींसौ तोरीवेला चमेली, इमरत से अनार। परबत····

स्थायी ताल-कहरवा : मध्यलय :

नि़—नि़ नि़ सं ऽ क र	नि़ सा रे — भो ऽ ले ऽ	रे — — सा ना ऽ ऽ थ	नि़ सा —सा सा पर ब—ऽतु पै
रे रे रे सा व गि या ल	नि़ सा सा— गा ऽ ई ऽ	सा — — — यो ऽ ऽ ऽ	सा — — — हां ऽ ऽ ऽ

अन्तरा

नि़ नि़ नि़ नि़ कौ ना ऽ ल	सा सा सा सा गा ई तो री	रे रे — रे बे ला ऽ च	सा — सा — मे ऽ ली ऽ
नि़ — नि़ — कौं ऽ ना ऽ	नि़ सा रे रे ने ऽ ऽ अ	रे — — सा ना ऽ ऽ र	नि़–सा–सा सा पर व ऽतु ये

उपरोक्त उदाहरण में पूर्वांग के स्वरों का सीधासादा प्रयोग स्पष्ट है। न इसमें कोई कण है, न खटका, न मींड़। लोकगीतों में जिस प्रकार कम से कम स्वरों का प्रयोग मिलता है, उसी प्रकार उनके स्थायी तथा अन्तरों में भी कम से कम विविधता पाई जाती है। कहीं-कहीं तो केवल एक ही धुन की पंक्ति रहती है, जिस पर सारा गीत गा लिया जाता है। ऐसे गीत स्वर-प्रधान न

होकर लय-प्रधान हो जाते हैं। एक ही धुन को देर तक दोहराते हुए लय की बढ़त करने पर जो समां बनता है, वह लय के ही कारण। ये धुनें नृत्य के लिये विशेष उपयुक्त होती हैं। ऐसी धुन की पंक्ति, जिसमें लय की बढ़त नहीं होती, वह गीत को शब्द-प्रधान बना देती है। एक या दो पंक्ति की धुनों वाले लम्बे-लम्बे गीत उस समय भी गाये जाते हैं, जब श्रमिकों को लम्बा समय बताना होता है। निराई गीत, कटाई गीत, बिलवाई गीत इसी श्रेणी के गीत हैं। एक बिलवाई गीत का उदाहरण देखिये जिसे महिलाएँ चक्की चलाते समय प्रातःकाल गाती हैं। इस सरल धुन को कोमल गन्धार के प्रयोग ने कितना मार्मिक बना दिया है :—

बिलवाई

सूरज के मुरक गये भोर राम के रथ नहीं मुरके कदली वन से।
काये के रथला बने अरे काये के जड़े हैं, जड़ाव, राम के रथ···
चन्दन के रथला बने अरे रेसम जड़े हैं जड़ाव, राम के रथ···
को इन रथला बैठियो अरे को है हांकनहार, राम के रथ···
रामजी रथला में बैठिया अरे लछमन हांकनहार, राम के रथ···

सा—
सू ऽ

स्थायी : कहरवा विलम्बित :

रे रे रे सा र ज के मु	रे रे रे रे र क ग ये	रे सा नि़ नि़ भो ऽ र रा	- नि़ सा - ऽ म के ऽ
रे रे रे रे र थ न हीं	रग़ ग़ रे सा मुर के क द	नि़ सां सा सा ली ऽ ब न	सा - - - से ऽ ऽ ऽ

अन्तरा

रे रे रे रे का ऽ ये ऽ	रे ग़ रे सा के ऽ र थ	नि़ सा सा सा ला ऽ ब ऽ	सा सा सा सा ने ऽ अ रे
रे - रे रे का ऽ ये के	रे ग़ रे सा ज डे हैं ज	रे सा नि़ नि़ ड़ा ऽ व रा	- नि़ सा - ऽ म के ऽ

मौसमी लोकगीतों में उन रागों के स्वरों का प्रयोग भी मिलता है, जो उस मौसम के समझे जाते हैं। मल्हारें, हिंडोला, सैरें, बारहमासे, कजली आदि बुन्देलखण्ड में खूब जम कर गाये जाते हैं और फाग का तो कहना ही क्या! अनगिनती फागें इस प्रदेश में बिखरी पड़ी हैं, जिनका पूरी तरह संकलन ही नहीं हो पाया है। होली मुख्यतः फसल का त्यौहार है। माघ की बसन्त पंचमी के संगीत के स्वरों की जो गूंज उठती है, वह फागुन में शिवरात्रि के बाद तो अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाती है। जिधर जाइये होली, रसिया, धमार और फाग की मदमती स्वरलहरियां सुनाई पड़ेंगी। फाग का एक उदाहरण देखिये—

फाग

मोरे पूरब पिछलेभाग री मौए पिया मिले फागुन में।
रंग अबीर ज्ञान की रोरी फेंक रहे पिया भर भर झोरी
मौए धब्बा लगे न दाग री मैं होजाऊँ बैदागन में। मोरे ···
जो तुम फाग रंगौ पिया रंग में मैं भी चीर रंगूं तेरे रंग में
जहाँ बजे छत्तीसों राग री मैं होजाऊँ बैरागन में। मोरे····
मैं हारी मेरे बालम जीते सुकृत के दिन नीके बीते
जाके सोने के माथे हार री मौए मजा मिलौ जागन में। मोरे···

स्थायी : ताल कहरवा :

(स सा / मो रे)

×	०	×	०
रे ग ग ग पू ऽ र ब	रे ग रे सा पि छ ले ऽ	सा – म – म ऽ भा ऽ ग	म – म प री ऽ मो ए
ग ग रे रे पि या ऽ मि	रे सा रे ग ले ऽ फा ऽ	रे सा सा सा गु न में ऽ	– – – – ऽ ऽ ऽ ऽ

अन्तरा

×	०	×	०
नि – नि़ नि़ रे ऽ ग अ	नि़ – सा सा वी ऽ र ज्ञा	रे रे रे – ऽ न की ऽ	रे़ – सा नि़ रो ऽ री ऽ
सा रे रे रे फें ऽ क र	रे – रे रे हे ऽ पि या	ग रे रे सा भ र भ र	सा सा सा सा झो री मो ए
रे ग ग ग ध ऽ ब ऽ	रे ग रे सा ल गे ऽ ना	सा – म – म ऽ दा ऽ ग	म – म प री ऽ मो ए
ग ग रे रे पि या ऽ मि	रे सा रे ग ले ऽ फा ऽ	रे सा सा सा गु न में ऽ	– – सा सा ऽ ऽ मो रे

फागों में रामावतार, कृष्णावतार, कबीर की साखियां आदि गाये जाते हैं। फाग की संगत में ढोलक नगड़िया झांझ और झींका का प्रयोग किया जाता है। लोग नाचते भी हैं और नकलची नकल करके सबका मनोरंजन करते हैं। देव-उठनी ग्यारस से लेकर सुखदेव-सोनी ग्यारस तक अर्थात् लगभग सात महीनों तक फागें गाई जाती हैं। कवि भुजबलसिंह तथा ईसुरी की फागें बड़ी प्रसिद्ध हैं। ईसुरी ने सहस्रों फागें रची हैं, जो साहित्यिक दृष्टि से अनमोल हैं। वे गायक भी थे। कहते हैं कि ईसुरी अपने कन्धे पर अपनी युवा कन्या को बिठा कर फाग सुनाते थे व चुनौती देते थे कि जो भी मुझे मात देगा, उसे अपनी कन्या ब्याह दूंगा। लोगों ने कहा—ब्राह्मण देवता कला पर इतना अभिमान न करो, किसी चाण्डाल ने यदि मात दे दी, तो यह कन्या उसे देना पड़ेगी। ईसुरी का उत्तर था——वह मुझे मात देने के बाद चाण्डाल न रहकर मेरा गुरू बन जायेगा। उसे मैं यह कन्या सहर्ष सौंप दूंगा। संयोग की बात कि एक ब्राह्मण युवक ने बाजी मार ली, तब तुरन्त ईसुरी ने अपने गले में पड़ी सोने की कण्ठी युवक के गले में डाल दी और उसे अपना दामाद बना लिया।

फागों में फड़बन्दी जब जमती है, तब बड़ा कुतूहलपूर्ण वातावरण बन जाता है। आमने-सामने दो प्रतिद्वन्द्वी पार्टियां बैठ जाती हैं व जवाब-सवाल के रूप में फागें चलती हैं, उसे फड़बन्दी कहा जाता है। कभी कक्का की फागें चलती हैं तो कभी बब्बा की। अगर कक्का की फाग चल रही है तो गाने वाले होंठ पर चूने की बिन्दिया लगा लेते हैं, जिससे यदि कोई शब्द प वर्ग का उच्चरित हो गया, तो मालूम हो जाता है व उसे हार मान लेना पड़ती है। फड़ों के बीच कभी-कभी बेड़िनी के नृत्य के लिये पर्याप्त स्थान छोड़ दिया जाता है। कभी फाग फगवारे उठाते हैं, तो कभी बेड़िनी। छन्दयाऊ तथा चौकड़याऊ फाग के अतिरिक्त प्रत्येक प्रकार की फाग पर बेड़िनी का नृत्य नहीं होता।

वर्षा तथा बसन्त दोनों ऋतुऐं उमंग और उल्लास की ऋतुएं हैं, अतः इन ऋतुओं में गाये जाने वाले लोकगीतों की धुनें ऐसी बनी हुई हैं कि जिनको सुनने पर तन नहीं तो मन फड़कने ही लगता है। सैरे गीत के साथ ठंडा नृत्य होता है। फाग में बेड़नियों के नृत्य का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। इसी प्रकार मांगलिक अवसरों तथा त्योहारों पर भी गीतों के साथ लोकजीवन में नृत्य का विधान है। शिशुजन्म के समय सोहरगीत के साथ तथा विवाह के समय बनरा गीत के साथ स्त्रियां नृत्य करती हैं। शीतला मैया के प्रकोप के बाद महिलायें देवी के मठ के सामने बधाई गीत पर नृत्य करती हैं। उसी प्रकार चैत्र तथा आश्विन मास में गाये जाने वाले जवारा गीतों पर सामूहिक

नृत्य होता है, जिसमें स्त्रियां सिर पर जवारों के घट एवं पुरुषों हाथों में त्रिशूल तथा मयूरपंख लिये रहते हैं। दीवाली के अवसर पर दिवारी गीत गाया जाता है, जिस पर अहीर, गड़रिये और गूजर जाति के लोग नृत्य करते हैं। इसी प्रकार के बुन्देलखण्ड में कुछ जाति विशिष्ट के नृत्यगीत हैं, जिन पर वे ही जातियां नृत्य करती हैं। उदाहरण के लिये, धुबैया गीत पर धोबी लोग विवाह के समय नृत्य करते हैं, जिसे कांड़रा नृत्य कहा जाता है। विवाह के समय आयोजित कोई जाति का सैतान नृत्य भी बहुत प्रसिद्ध है। इसमें स्त्रियां नृत्य करती हैं और पुरुष गाते हैं। राहुला और सजनई गीत ढीमरों तथा मछुओं के नृत्य के समय गाये जाते हैं।

'राई' बुन्देलखण्ड का अति प्रसिद्ध नृत्यगीत है। यह प्रायः समस्त देहातों में गाया जाता है। राई का अर्थ है—'राधा'। इस गीत को गाने का कोई विशेष समय नहीं है। अवकाश के समय कभी भी गाया जा सकता है। इसे पुरुष वर्ग अकेला भी गा सकता है, किन्तु बिना बेड़िनी के इसका मजा अधूरा रहता है। इस गीत को स्त्री और पुरुष दो पार्टियों में खड़े होकर गाते हैं व बीच में बेड़िनी नृत्य करती है। कभी-कभी जब बेड़िनी शराब पीकर फूहड़पन पर उतर आती है, तब दर्शकों को इंग्लिश डान्स जैसा आनन्द आने लगता है। राई गायन के साथ ढोलक, नगड़िया, झांझ और झींके का प्रयोग किया जाता है। मस्ती में आकर कभी-कभी ढोलक और नगड़िया वाला भी नाच के मैदान में उतर आते हैं। जब कभी गाने वाली कोई पार्टी गीत की पंक्ति के साथ जोड़ मिलाने में असमर्थ रहती है, तब बेड़िनी अपनी ओर से जोड़ कर मिला देती है। राई में केवल एक ही धुन होती है, जिस पर गीत की पंक्तियां गा ली जाती हैं। उदाहरण देखिये :—

राई

१. परदेसी की प्रीत आधी रैन को सपनो।
२. पूछत हो ललीं करलो नजर भर मिलनो।
३. करियो न गुमान थोड़े दिनन को जीना।
४. स्यामलिया सरीर सोचन में करिया पड़ गये।
५. उड़जा गंगाराम पिंजरा पुराने हो गये।
६. हमरों हंसना सुभाव भौजी बुरो जिन मानियो।
७. मैं पानी हों गई राजा हो गये पपीहरा।
८. भंवरी हेरै बार भंवरा अबलों न आये।
९. भुनसारे पहर किनने बजाई मुरलिया....इत्यादि

ताल-दादरा

×			०			×			×	ग भू	म न
प	न	—	नी	सां	सां	रें	रें	रें	रें	सांरें	नि
सा	रे	ऽ	प	ह	र	कि	न	ने	ब	जाई	मु
रें	सां	सां	नि	नि	ध	ध	प	—	—,	ग	म
र	लि	या	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ,	मु	न

बुन्देलखन्ड वीरप्रसूता भूमि है। महाराजा छत्रसाल, महारानी लक्ष्मीबाई आल्हा-ऊदल आदि इतिहास प्रसिद्ध योद्धाओं की गौरव गाथा लोकगीतों की कथावस्तु बन गई है। 'आल्हा' जिस धुन में गाया जाता है, वह धुन ही आल्हा' के नाम से जानी जाती है। आल्हा की धुन वीर रस का संचार करने में पूर्णतः सक्षम है। सम्भवतः वीर भूमि होने से बुन्देली लोकधुनों में प्रायः शुद्ध स्वरों का प्रयोग अधिक मिलता है। वैसे ब्रज का पड़ोसी प्रदेश होने से भक्ति गीतों में कोमल स्वरों का प्रयोग भी कम नहीं।

सुख-दुख, हर्ष-विषाद, उल्लास-आवेग तथा मिलन विछोह के क्षणों में मानव-जीवन की अभिव्यक्ति में सर्वत्र विशेष अन्तर नहीं पाया जाता। यही कारण है कि इन क्षणों में रचे गीतों के भाव परस्पर मिल जाते हैं। कभी-कभी तो समप्राकृतिक भाषाओं में शब्दावलियां तक मिल जाती हैं। जब भाषा इतनी मिलती है, तो स्वर क्यों नहीं मिलते होंगे! यह शोध का विषय है कि किसी अवसर के गीत में प्रयुक्त बुन्देली स्वरों से विभिन्न प्रदेशों के स्वर कहाँ तक साम्य रखते हैं व उन स्वरों में साम्यासाम्य के कारण क्या हैं। लोकगीत के शोधकर्ताओं से मेरा विनम्र निवेदन है कि जब वे किसी से लोकगीत प्राप्त करें, तो केवल कागज पर न लेकर टेप रेकार्डर पर लें, ताकि जहां साहित्यिक दृष्टि से उनकी समीक्षा में सुविधा होगी, वहाँ सांगीतिक दृष्टि से भी शोधकर्ताओं को बड़ी सुविधा होगी व फिर से गांवों में चक्कर लगाने का उनका समय बच जावेगा। लोक साहित्य की भांति समस्त भारतीय लोकसंगीत का भी समीक्षात्मक अध्ययन होना चाहिये।

बुन्देली लोकसंगीत बहुत ही समृद्ध है। उसके लिये पर्याप्त शोध की आवश्यकता है। यहां के लोकजीवन ने संगीत के तीनों अंगों—गीत, वाद्य और नृत्य को समानरूप से अंगीकार किया है तथा राम-कृष्ण की महिमा को गाकर भारतीय संस्कृति को सुरक्षित रखा है। बुन्देलखण्ड का लोकजीवन संगीत से इतना सराबोर है कि उसने फागें, दादरे, कहरवे, राई आदि गा-

गाकर तथा नाच-नाचकर इस भूमि के कण-कण को संगीत-सुधा से सींच दिया है। कालपी से लेकर होशंगाबाद तक तथा यमुना किनारे से लेकर मण्डया तथा अम्बिकापुर जिले की सीमा तक का प्रदेश बुन्देली लोक संगीत से ध्वनित है। तभी तो स्व० मुन्शी अजमेरी जी को लिखना पड़ा—

ग्राम गीत ग्रामीण यहाँ मिलकर गाते हैं।
सावन, सैरो, फाग, भजन उनको भाते हैं
ठाकुरद्वारे यहाँ अधिकता से छवि छाजें
मन्दिर के अनुरूप जहाँ संगीत समाजें
यह हरिकीर्तनमयी प्रसिद्ध पुनीत भूमि है
स्वर-संकलित बुन्देलखण्ड संगीत-भूमि है।

रंग महल, नई पेठ, उज्जैन

कल के ऊसर आज उगलते हरी हरी पगडंडियाँ / नीलकंठ

कल के ऊसर
आज उगलते-हरी-हरी पगडंडियाँ।
पौधे कवायद करते
खड़े कान सुनते हैं
मानव-मुक्ति का यह मैला कुचैला गीत
इमारतें बनाते हुए गाते हैं लोग।
जब कच्ची जुड़ाई के धसक जाने से
सीना भुरकुस हो जाता है
हर कोई खड़ा हो जाता
एक दूसरे के ठीक बाजू में,
ऐसी दाह के वक्त
हथेली हथेली के बीच
भीग-भीग जाती है।
जब बहुत हो जाता है
खूब-खूब गल जातीं हड्डियाँ
और सड़ जाता है मांस,
तब ऊसर चटकते हैं
पौधों की साख बंदूक बन जाती है
और कवायद में गाते हैं
कल के ऊसर
आज उगलते—हरी-हरी पगडंडियाँ।

—२/३ प्रोफेसर्स कालोनी, छतरपुर

सैलानी-मन / आदित्य 'ओम'

ऊपर,
आसमान से बातें करते
हिमाच्छादित शैल शिखर।

नीचे,
घाटियां लांघती
जलेबी-सी सड़क ।

एक क्षण,
बाजारों में
किरणों की चहल-पहल ।

दूसरे क्षण,
चुपके-से
कमरों में
घुस आते बादल ।

सच,
रंग-बिरंगे
मसूरी के मौसम-से
तुम्हारे प्यार ने
मेरा सैलानी-मन
जैसे
बांध लिया है ।

एडवोकेट, १८८, जवाहर रोड, छतरपुर, म० प्र०

आग विमोचन चाहती है / विद्या रश्मि

बहुत तेज दौड़ते हुए
अचानक थम जाना
ठीक वैसा ही जैसे किसी नदी का जम जाना
लेकिन पांव वापिस लौट सकते हैं, नदी नहीं ।
दुनियां में बीत गये पानी को
वापिस लौटाने की औषधि नहीं ।
चट्टानों का टूटकर रेत बनना
स्वाभाविक है,

किन्तु क्या चिरजीवी रह सकती है
कोई भी यात्रा
हां, हर अनिश्चय की नाव पर बैठा हुआ
एक कल्पित सत्य का नाविक है
जल, थल, और नभ सबका
अपना अपना संसार है
परिभाषायें स्थिति जन्य होती हैं
अस्तित्व का न कोई शून्य है न आकार
आजकल जलाशय में डूबे पेड़ों पर परिसंवाद हो रहे हैं
नाहक ही धुएँपर लिख रहे हैं सूर्यपुत्र शोध प्रबंध
जबकि आगविमोचन चाहती है
आज में तुम और यह समाज, इसकी तथाकथित चेतना ।

—मंजूपथ, दीक्षितपुरा, जबलपुर

इतनौ कँवे खाँ रै जानै / ऐसे हते फलाने

१० जून की संझा की बा घरी, गाज सी गिरी। मामुलिया के प्रबंध सम्पादक किशोरीलाल अग्रवाल लल्ला' अब नई रये माघ, सं १९८८ वि० में जनमे, इण्टर तक पढ़ाई। पिता श्री गणेश प्रसाद चौधरी और माता स्व० कुँवरि बाई। तीन भइया, तीन वैंने, भरौ-पूरौ घर। सन् १९७०-७१ सें कविताई शुरू, तबमें हिन्दी-बुन्देली कौ भंडारौ भरो। पैली रचना 'राधे' में कवि की आस्था किरन फूटी, फिर करीबन पाँच सौ गीत और अतुकांत रचनाएँ। पौंराणिक

श्री लल्ला

दीर्घ गीतन में सिद्धार्थ, उर्मिला, द्रोपदी, दुर्योधन, अर्जुन और अभिमन्यु वर्णनात्मक शैली में सीदौ सँदेसौं कात हैं। ऐई लीक सें जुड़े पंचवटी और आँसू खण्डकाव्यन में मैथिलीशरण गुप्त उर प्रसाद जू कौ असर आँखमिचौनी सी खेलत दिखात। चार-पाँच बरसन सें बुंदेली में लिखबौ चलो, करीब पाँच सौ फागें और फिर फाग के मुक्तक छंदन में 'हरदौल-चरित' खण्डकाव्य। जौं बुन्देली कीं नयी काव्यधारा में एकदम नओ प्रयोग कओ जा सकत। ऐई समै हिन्दी की चार कहानियाँ लिखीं गईं। आखरी दिनन बुन्देली फागन में 'रामायण' रच रये ते और सौ सें ऊपर फागें लिख चुके ते, पै 'रामायन' अधूरी रै गई। अधूरौ तौ सबई रै गओ। पाँच बिटियन, तीन बेटन, बिसूरत धरमपतनी कमलेश उर भइयन-बैनन कौ पूरौ कुटुम अबै तक भरे गरे सें बोलत। बौ ऊपर कौ कमरा, सकरौंदी सी जांगा, पै कवियन कौ जमघट हमेशा लगो रात तो, अब सूनौ-सूनौ लगत। अबै तक आधा सी बैंदी रत कै 'लल्ला' कउँ उतई लुके हैं बोलन चाउत।

सोक-सँदेसन सें ढ़ेर सौ लग गओ, जिला छतरपुर, की सबई साहित्यिक संस्थन, बुन्देली लोकभारती जबलपुर, मऊरानीपुर-टीकमगढ़ की परिषदन, कई शिक्षासंस्थन, व्यापारी संघन, साहित्यिक मित्रन, जाने माने राजनेतन उर सगे-संबन्धियन के प्रस्तावन और पत्रन सें दुख कौ समुन्दर जैसौ उमड़ पड़ो। अकादमी-परिवार कौ तौ एक अंगई जैसें टूट गओ। पै जैसें आत्मा अमर रात, ऊसई उनकी रचना अमर रैहै। मामुलिया के ई अंक में उनकी तीन रचनाएँ उनकी कथा कैहैं। उनके लानें श्री लल्लूमल चौरसिया की जौ फाग भेंट है—

लल्ला बने रये हैं लल्ला, ज्यों उँगरी के छल्ला।
मीठे बोल मधुर मुस्क्यानन मुरझाये सब गल्ला।
गागर में सागर भर कें जग में कर गये हल्ला।
मन मानिक के सुगर जोहरी छोड़ चले गये पल्ला॥

हो गओ खेत उजार...

मैं दई सें गई हार, तरइयाँ रीत चलीं
कैसो जौ सिंसार, बिथायें खूब पलीं।

किये पतो तो दुख जौ पर है
बिना तेल के बाती बरहै
अबा बनो सो भीतर-भीतर
धुआँ बिना बारो मन जर है

जोबन हो गओ भार, तरइयाँ रीत चलीं।

इन अँखियन ना कजरा भर है
रो-रो गालन ऊपर झरहै
भुन सारे सें उठकें सइयाँ
रूप कौन के मन कौ हरहै

बिथा भओ सिंगार, तरइयाँ रीत चलीं।

बीज बोयते मन में अपने
अंकुआ फूट लगे ते दिपने

बारो मन बौराय रईती
तराँ-तराँ के रच कें सपनें
उनपै परो तुसार, तरइयाँ रीत चलीं।
हरी-भरी बगिया मुस्काई
खेत खड़ी सरसों लहराई
ऐसे में ना जानै कीनै
आकें चुपके आग लगाई
हो गओ खेत उजार, तरइयाँ रीत चलीं।
कैसो जौ सिसार, बिथायें खूब पलीं॥

नवागत

आओ नवागत बंधु, आओ
स्वागत है तुम्हारा।
मैं भी अँकुआया था तुम्हारी तरह
उस पहाड़ी के तले
इस वांछा के साथ
बनूंगा एक पत्थर मील का
या कोई कलाकार
तराश कर मुझे
बना देगा चित्र एक
खजुराहो या कोणार्क का।
पर इस क्रूर दुनिया ने
दबा दिया उस रालर के तले
और पोत दिया कोलतार
मेरे नंगे शरीर पर।
तुम अँकुआये हो
तो अँकुआओ जरूर
पर भूल न करना मेरी तरह
अगर बनना चाहते हो अमर
तो किसी उद्‌घाटन में
मंत्री जी के कर कमलों से
बन जाना शिलालेख उनके नाम का।

भौजी कौ विलाप

कोउ बुला देव उनखाँ जाकें, जलदी देखें आकें।
निकरन चाहत प्रान ललन के मोसें ऊविष खाकें।
करी मती कैसीई दई नें खो दओ देवर पाकें।
घरी भरे में प्रान ललन के दे देहरी नाकें॥

किथै दिखाओं मुख जौ जाकें, सबई थूकहैं आकें।
कहैं सबई पिसाचिन मोसें जहाँ कहूँ भी पाकें।
इन पापी प्रानन के लानें आहुत दई ती जाकें।
बलि कौ बुकरा बन गये लाला बुला भवानी गाकें॥

भइया चले अकेले कैकें, जौ दारुन दुख लैकें।
सुख सें रइयो प्यारी भौजी सइयाँ कों सुख दैकें।
हटकत हटकत रै गई पापिन याद आउत रै रै कें।
मोरे लानै तज दये 'लल्ला' प्रान आपने ठैकें।

काये ललन अब बोलत नइयाँ, परे पसारें पइयाँ।
कब सें जगा जगा कें हारी दिन हो रओ अथइयाँ।
उठौ उठौ कछु मोसें बोलौ खोलौ नैन तरइयाँ।
अबै रात काँ आई 'लल्ला' निकरी नईं तरइयां॥

खा लेव ललन आज ई कर सें, प्रान हमारे तरसें।
कबसें धरो थार जौ परसो तुम खाओ हम परसें।
अपनन सें रूठें का हुइयै प्यारे हौ जगभर सें।
एक कौर तौ खा लेव 'लल्ला' प्रान हमारे हरसें॥

मोंसें बोलत नइयां भइया, मोरे स्याम कनइया।
बिना बछेरू कैसें रैहै कऔ ललन जा गइया।
तुम बिन और न दूजौ कोऊ मोखां धीर धरइया।
उठकें देखौ तौ तुम 'लल्ला' रो रई तोरी मइयां॥

('हरदौल-चरित' खण्डकाव्य से)

मध्यप्रदेश के बुन्देलखंड क्षेत्र में नवोपलब्ध चित्रित शैलाश्रय

एन० पी० गुप्ता

विगत कुछ वर्षों की खोजों से म० प्र० देश में प्रागैतिहासिक चित्रित शैलाश्रयों का एक विशाल संग्रहालय हो गया है। डा० व्ही० एस० वाकणकर एवं प्रोफेसर शंकर तिवारी जैसे कई विद्वानों की लगन एवं अध्ययन ने मध्य प्रदेश को यह गौरव दिलाया है, लेकिन यह खोजें उत्तरी और पश्चिमी म० प्र० तक सीमित हैं। म० प्र० का बुन्देलखण्ड क्षेत्र इन खोजों से प्रायः उपेक्षित पड़ा हैं, जबकि इस क्षेत्र में विन्ध्य पर्वत-श्रेणियों में से अनेक स्थल प्राप्त होने की संभावना बढ़ती जा रही है। १९६२ में श्री के० पी० जडिया ने पन्ना के पास वृहस्पति कुण्ड में ऐसे शैल चित्र खोजे थे। इसके पश्चात् १९७० के आस-पास सागर विश्वविद्यालय के डा० श्यामकुमार पाण्डेय ने छतरपुर जिले में देवरा पहाड़ी में एक ऐसा स्थल खोजा था, जिसमें लाल गेरू रंग में बनी दो फुट लम्बी एक सुन्दर मछली का चित्र प्राप्त हुआ था। इस खोज में डा० पाण्डेय के साथ इन पंक्तियों के लेखक को भी जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसके पश्चात् इन पंक्तियों के लेखक के ही प्रयत्नों से पन्ना एवं छतरपुर जिले में कई स्थल खोज निकाले हैं, जिनका विवरण निम्नलिखित है :—

[प्रस्तुत लेख में विद्वान लेखक की खोजों का संक्षिप्त विवरण दिया गया है और यह प्रतीक है उस आह्वान का, जो पुरातात्विक सम्पदा को उजागर करने वाले पुरातत्वविदों को बार-बार कुरेदता है। बुन्देलखण्ड की यह पथरीली भूमि आमंत्रित करती है सभी खोजकर्ताओं को और 'मामुलिया' उनके स्वागत में पलकें बिछाये खड़ी है। —सम्पादक]

पन्ना जिला

१—बराछ-पंडवन :—पन्ना नगर के दक्षिण में चौदह किलोमीटर दूर, पन्ना गुन्नौर मार्ग पर बराछ नामक ग्राम के समीप बहने वाले बड़ा नाला के किनारे अनेक चित्रित शैलाश्रय स्थित हैं। इनमें प्रमुख शैलाश्रय का नाम पण्डवन है, जो एक खुले हुये छत्ते के आकार का है। इस शैलाश्रय की दीवाल एवं छत में अनेक स्वतन्त्र चित्र एवं समूह चित्र बने हुये हैं। ये चित्र अधिकांशतः लाल, गैरिक रंग में हैं।' कहीं-कहीं पर काले एवं सफेद रंग का प्रयोग किया गया है। अनेक स्थान पर पहले के बने चित्रों पर दूसरे चित्रों का प्रक्षेपण किया गया है। इस चित्र-समूह में सबसे प्रभावकारी चित्र एक लगभग एक फुट लम्बा जंगली भैंसे का चित्र है, जिसका पूरा शरीर लाल रंग से भरा गया है। कालान्तर में इसके ऊपर पात्र भागते हुये सांभरों के चित्र बनाये गये हैं। इन सांभरों की शैली पहले से भिन्न है। इनके शरीर की वाह्य रेखायें लाल रंग से बनाई गयी हैं तथा अंदर का भाग आड़ी-तिरछी लाल रंग की रेखाओं के द्वारा चटाईदार डिजाइन में बनाया गया है।

इस चित्र-समूह में घुड़सवार योद्धाओं के अनेक चित्र बने है। घोड़े दौड़ते हुये अत्यंन गतिशील बनाये गये हैं। उनका पूरा शरीर लाल रंग से भरा गया है। उस पर सवार योद्धा एक हाथ में घोड़े की लगाम एवं चंद्राकार ढाल पकड़े हुये हैं तथा दूसरे हाथ में सीधी दुधारी तलवार लिये हुये है। उसका पूरा शरीर भी लाल रंग से भरा गया है। उसके बालों को लहरदार खड़ी रेखाओं से बनाकर योद्धा में क्रोध और युद्धोन्माद का भाव पैदा किया गया है। ये अत्यंत गतिशील चित्र हैं। इसी प्रकार एक योद्धा हाथी पर बैठा

दिखाया गया है। चित्रकार ने हाथी के सिर और मुंह को काले रंग से भर-कर प्रभाव उत्पन्न करने की कोशिश की है। इसके अलावा अनेक स्थान पर छोटे-बड़े हाथी के साथ, कुबड़दार बैल एवं हिरण आदि जानवर बनाये गये हैं। एक चित्र में एक बगुला मछली की ताक में बैठा दिखलाया गया है। एक कोने में 'पहाड़ी पर चन्द्र' का चिन्ह है, जो प्रायः मौर्यकाल से जोड़ा जाता है।

इस शैलाश्रय के समीप ही एक अन्य शैलाश्रय है, जिसमें लम्बे, नुकीले शिरस्त्राण पहने हुये तथा हाथ में भाला या तलवार लिये हुये योद्धा दिखलाये गये हैं। कहीं पर बैल को रस्सी से बांधकर ले जाते हुये मनुष्यों का चित्रण है।

२—**लाल पुतरिया** :—यह शैलाश्रय पन्ना से लगभग बीस कि० मी० दूर पन्ना पहाड़ीखेड़ा मार्ग पर इटवा ग्राम के सामने एक पहाड़ी पर स्थित है, जहाँ की चट्टानों पर बने चित्रों के कारण इसका नाम लाल पुतरिया पड़ गया। इस शैलाश्रय में लाल रंग में खजूर वृक्ष को उखाड़ते हुये एक हाथी तथा काले रंग में बने एक कुत्ते का सुन्दर चित्र है। इसके अलावा एक नृत्य-समूह में भाग लेते हुये अठारह शलाका-मानव की आकृतियाँ बनी हैं। इस शैलाश्रय के चित्रों का आक्षेपण हुआ है।

३—**मझपहरा-टपकनिया** :—पन्ना नगर से दक्षिण में दो कि० मी० दूर कुंजवन नामक ग्राम के पीछे मझपहरा नामक पहाड़ी में दो शैलाश्रय हैं। पहले का नाम मझपहरा तथा दूसरे का नाम टपकनिया है। मझपहरा आकार में काफी बड़ा है और पत्थर की खूब बड़ी छत बाहर की ओर निकली हुई है, किन्तु इनमें चित्रों की संख्या अत्यंत कम है तथा उनका रंग भी बहुत हल्का है। प्रायः सभी चित्रों का रंग लाल गैरिक है। इसमें एक पंक्ति में अनेक छोटे-छोटे जानवरों के चित्र हैं। जानवरों में हिरण, सांभर, बन्दर एवं बैल आदि के चित्र है। इन चित्रों के पास ही १४ वीं शताब्दी की देवनागरी लिपि में एक गोंड़ आदिवासी का लेख है। इस लेख में विक्रम संवत १३६९ का उल्लेख आया है।

चित्रों की दृष्टि से यहाँ का टपकनियाँ शैलाश्रय अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इसमें सफेद रंग में एक जंगली सुअर का चित्र है, जिसको ज्यामितिक रेखाओं के द्वारा अलंकृत किया गया है। सांभर के अनेक छोटे-छोटे चित्र यहाँ बने हुये हैं। इस चित्र-समूह में एक यात्रा जुलूस का सुन्दर चित्र है। इसमें तीन व्यक्ति एक हाथी पर सवार हैं, जिसके आगे कुछ लोग नृत्य करते एवं देहाती बीन बजाते चल रहे हैं। एक व्यक्ति कांवर में जल लेकर चल रहा है। यह संभवतः तीर्थयात्रा का दृश्य है।

४—**हाथी दोल** :—यह शैलाश्रय अत्यंत गहन वन के बीच स्थित है।

यह पन्ना के दक्षिण में रमपुरा ग्राम के समीप बहने वाले बबारी नाले के किनारे स्थित है। नाले के मध्य में एक बहुत गहरा कुण्ड है, जिसके समीप ही यह शैला-श्रय स्थित है। इस शैलाश्रय में युद्ध दृश्य का बहुत ही सुन्दर चित्रण है। इसमें पैदल योद्धाओं की तीन पंक्तियाँ बनी हैं। सबसे ऊपर वाली पंक्ति में तेरह पैदल योद्धा एक हाथ में चन्द्राकार ढाल तथा दूसरे में दोधारी सीधी तलवार लेकर अत्यधिक गति से दौड़ रहे हैं। इनके पैरों की रूपरेखा में अत्यधिक गति-शीलता दिखलाई पड़ती है। दूसरी दो पंक्तियों में इसी प्रकार के योद्धा बने हैं, जिनमें किसी के पास ढाल-तलवार तथा किसी के पास भाला या धनुष है। कुछ व्यक्तियों को दूर से इन पर तीर-धनुष से वार करते दिखलाया गया है। इन पंक्तियों के मध्य में सफेद रंग में एक सुन्दर घुड़सवार का चित्र है। घोड़े की गर्दन बहुत ही लम्बी बनाई गई है, जिससे वह जिराफ का भ्रम पैदा करती है। इस पर सवार योद्धा सरदार या सेनापति है, क्योंकि वह काठी पर बैठा हुआ हैं तथा उसके पीछे एक व्यक्ति हाथ में एक ऊँचे डंडे में बंधे हुये मोर पंख वाला राजदंड लिये हुये है। यहां सफेद रंग में एक नृत्य करती हुई स्त्री का चित्र है, जिसका शरीर लम्बा आयताकार बनाया गया है। इसमें अनेक स्थान पर कूबड़दार बैल बने हुये हैं, जिससे ऐसा लगता है कि यह युद्ध पशुओं के लिये हो रहा है।

५—**पुतरिहाऊ घाटी** :—जैसा कि नाम से ही ध्वनित होता है, इस शैलाश्रय में बने चित्रों से आस-पास के लोग परिचित थे। यह स्थान पन्ना दक्षिण में ३७ कि० मी० दूर रामपुर ग्राम के समीप है, जहाँ पन्ना-कटनी रोड पर स्थित अमानगंज नामक कस्बे से रास्ता जाता है। इस स्थल के समीप ही केन नदी एक घाटी से होकर बहती है। यह स्थान म० प्र० शासन द्वारा विकसित किये जा रहे गंगऊ राष्ट्रीय उद्यान में है। शैलाश्रय काफी लम्बा है तथा उसकी दीवालों पर कई बार चित्रों का आक्षेपण हुआ है। इन चित्रों में लम्बी आयताकार शरीर वाली मानव आकृतियाँ हैं, जिसके शरीर को लहर-दार खड़ी रेखाओं से भरा गया है। ये लाल गैरिक रंग में हैं। इसमें अनेक जंगली जानवरों के तथा शिकार और युद्ध दृश्य के चित्र लघु रूप में प्राप्त होते हैं। इस शैलाश्रय के आसपास कई शैलाश्रय स्थित हैं, जिसमें ठाड़ा पाथर नाम का शैलाश्रय है। इस शैलाश्रय में समूह-नृत्य की भरमार है। राष्ट्रीय उद्यान में स्थित होने के कारण पर्यटन की दृष्टि से यह शैलाश्रय महत्वपूर्ण हो सकते हैं।

६—**कल्याणपुर-बिलाड़ी** :—पन्ना के उत्तर में अजयगढ़ धरमपुर मार्ग में कल्याणपुर ग्राम के समीप फैली हुई पर्वत-श्रेणियों में अनेक चितित शैला-श्रयों के स्थित होने की सूचना है। इन्हीं पर्वतश्रेणियों के एक छोर में कालिंजर

का प्रसिद्ध ऐतिहासिक दुर्ग स्थित है। इन पंक्तियों का लेखक कल्याणपुर ग्राम के पास स्थित बिलाड़ी नामक पर्वत पर एक शैलाश्रय में जाने में सफल रहा। यह शैलाश्रय जमीन से लगभग तीन सौ फुट ऊपर अत्यंत दुर्गम स्थान पर स्थित है। चारों ओर घना वन है। लगभग सौ फुट लम्बे और पचास फुट चौड़े इस शैलाश्रय की दीवाल पर अनेक बार चित्रों का आक्षेपण हुआ है। लहरदाह आयताकार वन मानव आकृतियाँ, सांभर एवं बंदर आदि जंगली पशु-आकृतियाँ अनेक स्थानों पर बनी हुई हैं। इन चित्रों में बैलोंके बड़े सुंदर चित्र प्राप्त हुये हैं। ये बैल बहुत कम उठे हुये कूबड़ के हैं और इनके शरीर को तिरछी रेखाओं से भरा गया है। प्रत्येक रेखा से अनेक छोटी-छोटी रेखाओं की शाखायें बनाई गई हैं। कलाकार ने इसके द्वारा बैलों में अत्यंत प्रभाव उत्पन्न किया है। इसके अतिरिक्त यहाँ भी गैरिक एवं सफेद रंग में बनी समूह नृत्य करती हुई मानव आकृतियाँ बनी मिली हैं। स्थानीय ग्रामवासियों के अनुसार इस बिलाड़ी पर्वत के समीप दूसरे पर्वत में कई लम्बे-चौड़े शैलाश्रय हैं, जिनमें बहुत से चित्र बने हैं। साधनों एवं समय के अभाव में यहाँ पहुँचना संभव न हो सका।

छतरपुर जिला

१—जटाशंकर क्षेत्र—जटाशंकर छतरपुर जिले का प्रसिद्ध धार्मिक स्थल हैं, जो बिजावर के समीप स्थित है। यहाँ के जटाशंकर मंदिर के ठीक ऊपर लगभग एक फर्लाङ्ग तक उभरी हुई छत वाले शैलाश्रय फैले हुये हैं, जिनके अन्दर काफी समतल स्थान है, किंतु इन शैलाश्रयों की चट्टानें बहुत मुलायम और भुर-भुरी हैं, जिनके कारण अधिकांश चित्र नष्ट हो गये हैं। कुछ जानवरों और मानवाकृतियों के चित्र बचे हैं। इनमें अपनी पूंछ ऊपर को उठाये हुये एक पंक्तियों से जाते हुये बंदरों का सुंदर चित्र है। इसी प्रकार देवरा ग्राम के समीप की पहाड़ो की एक गुफा में लाल गैरिक रंग में सुन्दर चित्र अंकित हैं। इनमें दो फीट लम्बी मछली का सुन्दर अंकन हुआ है।

साधन के अभाव में इन शैल चित्रों के अच्छे फोटोग्राफ लेना या विस्तृत अध्ययन करना संभव नहीं हो सका है। इस खेल के द्वारा क्षेत्र में कार्य करने वाले विद्वानों का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहता हूँ, जिससे बुन्देलखण्ड क्षेत्र की यह महत्वपूर्ण पुरातात्विक संपदा उद्घाटित की जा सके, उसका विस्तृत अध्ययन किया जा सके एवं इन्हें सांस्कृतिक धरोहर के रूप में सुरक्षित रखा जा सके।

पुरातत्व विभाग, संस्कृत कालेज, रायपुर, म० प्र०

ललितपुर जनपद का प्राचीन इतिहास /

बिहारीलाल बेवले

संप्रति परिचय :

भारत के उत्तर प्रदेश के दक्षिणी-पश्चिमी कोने में बुन्देलखंड संभाग के मध्य में २४-११ से २५-५७ उत्तरी अक्षांश एवं ७८-२५ पूर्वी देशांतर में ललितपुर जनपद अवस्थित है। बेतवा की घाटी की संस्कृति की संरचना एवं अति पुरातन इतिहास की यह अप्रतिम व महत्वपूर्ण स्थली रही है, जिसकी उत्तरी सीमा पर झांसी जनपद, दक्षिण में सागर, पूर्व में टीकमगढ़ एवं पश्चिम में गुना जनपद हैं। यह तीन ओर से मध्यप्रदेश से घिरा हुआ विंध्याचली पठारी क्षेत्र है, जहाँ बेतवा (बुन्देली सुरसरि) सबसे बड़ी नदी है, जिसकी घाटी के परिसर में पुरातत्व, पुरा इतिहास, अमित पुरानी संस्कृति व कला अन्तर्निहित है। १९७४ ई० तक यह झांसी जनपद का ही एक भाग था।

अति पुरातन इतिहास :

अति पुरातन युग में यह जनपद चेदि देश, चेदि राष्ट्र, जेजाकभुक्ति, जिझौती एवं बुन्देलखंड की संज्ञा से अभिहित रहा है।

ललितपुर जनपद का वर्णन प्रागैतिहासिक काल से ही प्रारंभ हो जाता है। यहाँ 'पूर्व पाषाण कालीन' औजार प्राप्त हुये हैं, इन औजारों में प्रमुखतया हैंडएक्स (Handaxe) एवं 'क्लीवर्स' उपलब्ध हुये हैं।[२] ऐसे औजारों सरिताओं के किनारे आज भी प्राप्त हैं। ललितपुर नगरी के पश्चिमोत्तर सीमान्त पर बयाना नाला में ये औजार अब भी मिलते हैं। यहाँ की आदिम प्रागैतिहासिक जातियों में भील, कोल, रावत-सहरिया, गोंड, भार व बंगर

१. गजेटियर आफ इंडिया उ० प्र० झांसी के अनुसार यह १८६१ से ८१ ई० तक जिला (जनपद) रहा है। द्रष्टव्य रिपोर्ट आन दि ऐण्टीकीटीज इन दि डिस्ट्रिक्ट आफ ललितपुर।

२. एच० डी० संकालिया, प्री हिस्ट्री, एंड प्रोटो हिस्ट्री इन इंडिया एंड पाकिस्तान (१९६१) पृष्ठ ५८, तथा इंडियन आर्कियलोजी १९५६-५७, पृष्ठ ७९।

आदि थे. जो. आज भी वन्य प्रदेशों व ग्रामों में रहते हैं। अतः पुरातन काल
में इस जनपद में हैहएवस कल्चर रही है।

आत्यंतिक पुरातन आर्य जन, जो इस जनपद से जुड़े हुये थे, चेदि महा-
जन पद के ही भाग थे। जनपद संप्रति बुन्देलखंड ही कहलाता था। यहाँ का
प्रारंभिक राजा कसुचैद्य (महाभारत का वसु) था। ऋग्वेद में (VIII-५३७)
यह राजा एक दान स्तुति मे अपनी उदारता के हेतु प्रसिद्ध था।[1]

पुराणों के अनुसार इस जनपद पर चंद्रवंशी पुरुरवा ऐल राज्य करता
था। उसका प्रपौत्र ययाति एक महान् विजेता था। उसने मध्यप्रदेश (ललित
पुर जनपद सहित) जीता था। तत्पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र यदु, चम्बल,
बेतवा एवं केन सरिताओं के क्षेत्र का राजा बना। ललितपुर जनपद उसके
राज्यान्तर्गत था।[2] कालान्तर में यादव वंश के स्थान पर यहाँ हैहयवंश की
राज्य शक्ति का आविर्भाव हुआ। फिर पुनः यादवो ने स्थापित होकर चेदि
जनपद को स्थापित किया। कुछ समय बाद चेदि राजाओं को कुरु वंश के वसु
राजा ने जीत लिया। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका राज्य पाँच पुत्रों में
विभक्त हुआ एवं चेदि जनपद बहुत से भाग सहित ललितपुर जनपद में प्रत्य-
ग्रह का राज्य स्थापित हुआ। चंद्रावती या चंदेरी में, जो कि ललितपुर जनपद
से जुड़ा हुआ स्थल है, सुबाहु राजा के समय दमयंती ने दुख के दिन यहीं
व्यतीत किये थे। कुछ पीढ़ियों बाद दमघोष राजा बना, जिसका पुत्र शिशु-
पाल था तथा जिसको पांडवों ने इन्द्रप्रस्थ में आयोजित राजसूय यज्ञ में आमं-
त्रित किया था। शिशुपाल ने अपने से अधिक श्रीकृष्ण का सम्मान देखकर
क्रोध प्रकट करते हुये उन्हें अपमानित किया था, अतः कृष्ण के द्वारा वहीं
मारा गया था। चेदियों व ललितपुर जनपद के नागरिकों ने महाभारत में
पांडवों को समर्थन दिया था।[3] शिशुपाल की राजधानी चंदेरी कही जाती
है। उसके बाद उसका पुत्र धृष्टकेतु उत्तराधिकारी बना। वस्तुतः चेदि जनपद
मध्यप्रदेश में अवस्थित था। इसके क्षत्रिय अमित वीर एवं भगवान श्रीकृष्ण
की राय से काम करते थे। कदाचित् महाभारत के बाद चेदि वंश नंदों तक
अपनी शक्ति कायम रखने में समर्थ थे। महाभारत[4] के बाद उनका हैहयवंश
ने या वीतिहोत्रों ने ले लिया था, जिनका पुराणों की सूची में उल्लेख है। वंश

१. बीमस्, जांन (एडि०) मेमायर्स आन हिस्ट्री, फोक लोर एंमें डिस्ट्रीब्यूशन आफ दि रेसज आभ नार्थ वेस्टर्न प्राविन्स आफ इंडिया वालु० प्रथम पृष्ठ ३३।
२. दि हिस्ट्री आफ कल्चर आफ इंडियन पिवपिल भाग १, पृष्ठ २७४।
३. दि वेदिक एज पृष्ठ २९८
४. पार्जीटर ९५०, ई० पू०

परिवर्तन के साथ देश का नाम नहीं बदला था, क्योंकि छठी सदी ई० पू० के
महाजन पदों में वत्स के साथ चेदि का भी नाम प्राप्त है। अंगुत्तर निकाय
में भी ये नाम प्राप्त होते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वत्स के शतानीक के
आधिपत्य में यह जनपद रहा है। लगभग छठी सदी पूर्व के मध्य में अवन्ती-
नरेश प्रद्योत ने चेदि प्रदेश को अपने राज्य में समाहित कर लिया था। चौथी
सदी ई० पू० महापद्मनंद ने वीतिहोत्रों को समाप्त करके इस जनपद को
मगध में मिला लिया था[1] नंदों के पश्चात् ललितपुर जनपद मौर्यों के अधि-
कार में आ चुका था। सम्राट् अशोक के आधिपत्य का प्रमाण दतिया-अभिलेख
एवं देवगढ़-प्रमाण से भी स्पष्ट है।[2] पुराणों एवं हर्षचरित के अनुसार पुष्यमित्र
शुंग १८४ ई० पू० में शासक बना। शुंगों के आधिपत्य में ललितपुर जनपद
भी था। पुष्यमित्र शुंग का पुत्र अग्निमित्र इस प्रदेश का वायसराय था एवं
विदिशा उसकी राजधानी थी। आंध्र के सातवाहनों ने शुंगों को तथा इसके
बाद कण्वों को समाप्त कर दिया था[3]। प्रथम सदी ई० में ललितपुर जनपद
कुषाण शासन में रहा। कनिष्क प्रथम (७८ ई०–१०१ ई०) के समय में देव-
गढ़ व मथुरा के व्यापारिक एवं सांस्कृतिक संबंध थे।[4] इसके बाद का भार
तीय इतिहास 'अंधकार-युग' नाम से कहा गया है। इस काल में आभीरों का
आधिपत्य ललितपुर जनपद में स्थापित हुआ। आभीरों के आस-पास नागों का
भी प्रभाव यहाँ रहा है। प्रयाग प्रशस्ति में इनका उल्लेख है।

तीसरी सदी ई० में मध्यप्रदेश में वाकाटक वंश राज्य करने लगा था।
प्रवरसेन प्रथम वाकाटक नरेश ने बुंदेलखंड में अपना आधिपत्य स्थापित किया
था। तृतीय-चतुर्थ सदी में झांसी-ललितपुर जनपदों पर वाकाटक एवं पद्मावती
के नागवंश राज्य कर रहे थे तथा कुछ भाग पर आभीर भी थे।[5] वाकाटक
नरेश पृथ्वी षेण द्वितीय ने चेदि देश-पर्यन्त अपने साम्राज्य का विस्तार किया
था। व्याघ्रदेव ललितपुर जनपद का मांडलिक था[6]।

चतुर्थ सदी ई० के मध्य में समुद्रगुप्त ने अपने विजयाभियान के अन्तर्गत
इस क्षेत्र को भी जीत लिया था, तत्पश्चात् रामगुप्त चंद्रगुप्त द्वितीय 'विक्रमा-

१. दि एज आफ इम्पीरियल यूनिटी, पृष्ठ ३२-३३
२. कनिंघम, ए० एस० आई, जिल्द १०, पृष्ठ १०२
३. झांसी गजेटियर, पृष्ठ ३३
४. दि० ए० ई० यू०, पृष्ठ १५१
५. (अ) झांसी गजेटिर—पृष्ठ २ (ब) पोलि० हिस्ट्री आफ इंडिया। डा० हे० चं० रायचौधरी, पृष्ठ ५४२
६. वाकाटक राजवंश और उसके अभिलेख, मिराशी, पृष्ठ ३७

दित्य कुमार गुप्त, स्कन्दगुप्त आदि के प्रभाव में वह ललितपुर जनपद रहा। गुप्तों के शासन-प्रबन्ध के आलेखों में चेदि भुक्ति कहा गया है। ४३५ ई० में घटोत्कच गुप्त ललितपुर बीना के समीप ऐरण में वायसराय था तथा गोविन्द गुप्त ललितपुर जनपद का वायसराय था, उसका उल्लेख देवगढ़ के गुप्तयुगीन मंदिर में उपलब्ध होता है। कदाचित् गोविन्दगुप्त ने ही दशावतार मंदिर का निर्माण करवाया था[१]। यहां सिद्ध की गुफा में भी एक गुप्तयुगीन अभिलेख उत्कीर्ण है। नरसिंहगुप्त बालादित्य के राजत्व काल में हूणों के आक्रमण के तहत ५१२ ई० में मिहिरकुल (हूण) चेदि प्रदेश बुंदेलखंड तक बढ़ आया था, ५३३ ई० में गुप्तों के पराभव के बाद मालवा के यशोधर्मन का राज्य इस जनपद में भी स्थापित हो गया था[२]। सातवीं सदी के अर्द्ध भाग तक परिव्राजक महराज हस्तिन यहां का शासक था। यात्री ह्वेनसांग इस क्षेत्र में एक ब्राह्मण राजा का उल्लेख करता है।

डा० स्मिथ, नीहार रंजन रे, डा० आर० सी० मजमूदार एवं डा० राधा कुमुद मुकर्जी तथा डा० वी० सी० पांडे के विवरण के अनुसार (नर्मदा तक) राजा हर्ष (६०६ ई०-६४७ ई०) का राज्य इस जनपद में रहा है। ऐहोले के अभिलेख में उसे उत्तरापथ-नाथ कहा गया है। दक्षिणी सीमा नर्मदा तक थी।[३] कालान्तर में यहां गोड़ों का आधिपत्य हो गया। बेहट शब्द गोड़ों के दिये हुये हैं, जिसका अर्थ होता है ग्राम। ललितपुर के अन्तर्गत तालबेहट व बालाबेहट इसके प्रतीक हैं।

आठवीं सदी में गोड़ों के बाद जनपद में प्रतिहारों का राज्य स्थापित हुआ। गुर्जर प्रतिहार-शासन यहां देवगढ़ में बारहवें जैन मंदिर के अर्द्धमंडप में उत्कीर्ण वि० सं० ६१६ के अभिलेख से प्रमाणित है। इस अभिलेख के अनुसार देवगढ़ और आस-पास के क्षेत्र पर भोजदेव प्रतीहार के महासामन्त विष्णुदेव का शासन था। प्रारंभिक प्रतिहारों में वत्सराज और नागभट्ट द्वितीय का

१. गजेटियर आफ ई० उ० प्रदेश, झांसी (१६६५) पृष्ठ २२, बु० खं० का सं० इतिहास, गोरेलाल तिवारी।

२. मंदसौर अभिलेख: सिलेक्टड इन्सक्रपसन्स, डी० सी० सरकार, भाग १ पृष्ठ ३८६।

३. (अ) द० सं० त्रिपाठी, प्रा० भा०, पृष्ठ २२५ (ब) देवगढ़ की जै० क० डा० भागचंद्र जैन, पृष्ठ ६ (स) अर्ली हिस्ट्री आफ इंडिया (द) इंडियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली (य) जर्नल आफ दि बिहार-उड़ीसा रिसर्च सोसायटी (र) हर्ष-डा० मुकर्जीकृत (ल) प्रा० भा० का इति० पांडे कृत।

प्रभुत्व इस जनपद पर रहा है। नागभट्ट के राजत्व काल में राष्ट्रकूट राजा गोविन्द तृतीय भोपाल ललितपुर-झांसी से होता हुआ झांसी-ललितपुर के निकट लड़ा था, जिसमें नागभट्ट द्वितीय की पराजय हुयी थी। राष्ट्रकूट नरेश के कारण देवगढ़ का दुर्ग निर्मित एवं सुदृढ़ किया गया था[१] तथा प्रान्त का मुख्यालय बनाया गया था, जिसके अन्तर्गत झांसी ललितपुर जनपद भी थे।[२] नागभट्ट द्वितीय के पौत्र महाराजाधिराज मिहिर भोज 'आदिवाराह' (८३६-६२ ई०) के राज्य का यह स्थल अधिक महत्वपूर्ण था। विष्णु वर्मा या विष्णु राम) के युग में कदाचित वाराह-देवायतन देवगढ़ दुर्ग-पहाड़ी पर बनाया गया। भोज का उत्तराधिकारी महेन्द्रपाल प्रथम (८८५-६०८ ई०) का इस जनपद पर आधिपत्य रहा। सीरोन खुर्द कलातीर्थ में इस संदर्भ का एक अभिलेख उपलब्ध हुआ है, इस समय सीरोन मुख्यालय था एवं उंदाभट (Undabhata) प्रान्तपति था और यहां रहता था। प्रतिहार वंशावली इसमें है। इसमें ६०३ ई० से ६६८ ई० तक की आठ तिथियां उत्कीर्ण हैं।[३] प्रतिहारों का पुरातत्व ललितपुर नगरी में भी बिखरा पड़ा है। महेन्द्रपाल के बाद भोजदेव द्वितीय, महीपाल प्रथम (६१३-६४५ ई०) या क्षितिपाल (खजुराहो लेख) के अधिकार में यह जनपद था। तत्पश्चात् महीपाल द्वितीय (६४६-६८८ ई०) (परतावगढ़ अभिलेख) का इस जनपद पर राज्य रहा। फिर उसका पुत्र विनायकपाल (६४५ ई०) का उल्लेख खजुराहो अभिलेख में है, 'विनायकपाल देव पालयति वसुधाम्' तत्पश्चात् ऐसा प्रतीत होता है कि इस जनपद एवं चेदि प्रदेश में चंदेल शक्ति का उदय हो चुका था।[४]

ललितपुर जनपद में चंदेलों का उद्‌भव और विकास :

ललितपुर जनपद में चंदेल-शक्ति गोड़ों को समाप्त करके विकसित हुयी थी।[५] परन्तु इनका प्रथम शासक और उसके उत्तराधिकारी प्रतीहारों के अन्तर्गत ही थे। नान्नुक के बाद वाक्पति एवं जयशक्ति (जेजाक) शासक हुये। बुन्देलखंड को पहले जेजाकभुक्ति कहा गया है। तत्पश्चात् विजयशक्ति एवं राहिल शासक हुये। राहिल के बाद हर्ष (६००-६२५ ई०) एक सर्व शक्तिमान राजा हुआ, जिसके समय में राष्ट्र कूट इन्द्र तृतीय कन्नौज पर

१. दि एज आफ इम्पीरियल कन्नौज, पृष्ठ २७, डा० आर० सी० मजूमदार कृत।

२. गजेटियर आफ इंडिया उत्तर प्रदेश झांसी, पृष्ठ २६ (१६६५)

३. ड्रेक ब्राकमैन, डी० एल० ए० झांसी गजेटियर, पृष्ठ ३१७

४. डा० राजबली पांडे, प्राचीन भारत, पृष्ठ ३०५

५. दि हिस्ट्री आफ चंदेलाज—नि० सा० बोस, पृष्ठ १५।

आक्रमण करने भोपाल ललितपुर-झांसी-कालपी मार्ग से आया था। हर्ष के बाद यशोवर्मन प्रतापी राजा हुआ। यशोवर्मन ने अपनी सीमा उत्तर में यमुना तक बढ़ायी। यह जनपद उनके अधिकार मे था।[1] परन्तु यशोवर्मन के बाद धंग (९५०-१००२ ई०) चंदेलों में सर्वशक्तिशाली शासक था, जबलपुर व विदिशा उसके सीमान्त पर थे।[2] धंग ने प्रतिहारों के विरुद्ध स्वतंत्रता घोषित कर दी थी तथा महाराजाधिराज का विरुद्ध धारण किया था। ललितपुर जनपद उसके अधिकार में ही था। धंग के अभिलेख ललितपुर के समीप दूधई कला-तीर्थ में प्राप्त हुये है। अभिलेखों में झांसी ललितपुर को एक मंडल के रूप में व्यक्त किया गया है। ये लेख दसवीं सदी के है। ६ अभिलेख वर्णन करते है कि देवलब्धि, यशोवर्मन के पौत्र, ने इस इलाके में मंदिर बनवाये थे तथा देवलब्धि के पिता कृष्णपाल को एक शहर (कदाचित् दूधई) का १००० ई० में संस्थापक बतलाते हैं। कृष्णपाल धंग का अनुज था, देवलब्धि कृष्णपाल के बाद यहां का शासक बनता है। ये दोनों यहाँ के महासामन्त थे। दूधई झांसी-ललितपुर मंडल का मुख्यालय था।[3] इसके तीसक वर्ष बाद के काल में, अलबरूनी दूधई को एक बड़ा नगर बतलाता है, जिससे प्रतीत यह होता है कि ग्यारहवीं सदी में यह एक महत्वपूर्ण स्थान था।[4]

विद्याधर एक महान् राजा था। उसकी उत्तरी भारत के शक्तिशाली शासकों में गणना थी। उसके समय में महमूद गजनवी के आक्रमण हो रहे थे। पंजाब की हिन्दुशाही इस आक्रमण से आतंकित एवं संत्रस्त हो चुकी थी। बुन्देलखंड (जेजाक भुक्ति) एवं इस जनपद की स्थिति चंदेल नरेश के कारण सुरक्षित थी। १०१९ में महमूद पंजाब को रोंदता हुआ झांसी-ललितपुर जनपद से होता हुआ, ग्वालियर के कच्छपघातों से संधित करता, हुआ कालंजर आ पहुँचा। धर्मरक्षक, प्रजापालक राजा विद्याधर से भी संधि की।[5] विद्याधर भी ललितपुर जनपद को महत्वपूर्ण मानता था, उसने मदनपुर में एक शिव मंदिर बनवाया था। स्तंभ पर उसका नाम उत्कीर्ण है। १०३०-५० ई० में विजयपाल व १०५०-१०६० ई० में देववर्मन का संघर्ष कलचुरि नरेश

१. दि हिस्ट्री आफ कन्नौज—डा० रमाशंकर त्रिपाठी, पृष्ठ २७२।
२. दि हिस्ट्री आफ चंदेलाज—नि० सा० बोस, पृष्ठ ४२-४३।
३. आर्कियोलोजिकल सर्वे आफ इंडिया, भाग १०५-९५।
४. एन्टीक्वटीज आफ ललितपुर, पृष्ठ १ तथा सचाऊ ई० एनसाइक्लोपीडिया, भाग १, पृष्ठ २०२।
५. आ० स० आ० ई० भाग १६, पृष्ठ २३-२४
हृ० आ० चं०, नि० सा० बोस, पृष्ठ ५९

कर्णदेव से हुआ था। सामरिक दृष्टि से देवगढ़-दूधई उसके हेतु महत्वपूर्ण थे। पर वह हार गया था।[1] कदाचित् कलचुरियों ने इस जनपद पर अत्यल्प समय के लिये आधिपत्य जमाया, पर कीर्तिवर्मन (१०६०-११०० ई०) ने कलचुरियों को पराजित करके अपने प्रदेशों को वापिस लिया था। कीर्तिवर्मन का अभिलेख संवत ११५४ (१०९८ ई०) का देवगढ़ में राजघाटी में उत्कीर्ण है कीर्तिवर्मन का एक सुयोग्य मंत्री वत्सराज था। उसने कीर्तिदुर्ग और वत्सराज घाटी का निर्माण करवाया था। ऐसा प्रतीत होता है कि दुर्ग की उसने मरम्मत करवायी थी।[2] उसका दक्षिण में बेतवा तक राज्य था। तत्पश्चात् सल्लक्षण (११००-१११५ ई०) ने कलचुरियों एवं मालवा के परमारों को हराया था। देवगढ़ उसका सामरिक आधार था। उसके बाद जयवर्मन (१११५-११२० ई०), पृथ्वीवर्मन (११२०-११२९ ई०) और मदनवर्मन (११२९-११६३ ई०) चंदेल राजा हुये। मदनवर्मन ने इस बीच खोयी हुयी लक्ष्मी को प्राप्त किया। ललितपुर जनपद में उसने मदनपुर बसाया था। उसने यहां एक सरोवर एवं मंदिर बनवाया था। इस समय देवगढ़-चांदपुर में उदयपाल उसका महासामन्त रहता था।[3]

वीर चंदेलनरेश मदनवर्मन के बाद परमर्दिदेव (परमाल) ११६५-१२०२ ई० में प्रजापालक शासक हुआ। उसके आल्हा और ऊदल दो महासामन्त थे, जिनकी वीरता जगनिक के 'आल्हा' में दी गयी है। परमाल का शत्रु पृथ्वीराज चौहान तृतीय था। दोनों मे संघर्ष हुआ। चौहान राजा विजय हुआ और जेजाक भुक्ति का बहुत सा भाग अधिकृत किया। पृथ्वीराज के तीन अभिलेख मदनपुर के शैव मंदिर में प्राप्त होते है।[4] ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय के लिये महोबा व ललितपुर जनपद के कुछ भाग पर चौहानों का आधिपत्य हुआ, पर परमाल ने उन्हें वापिस ले लिया था। परमाल के बाद यह जनपद भी त्रैलोक्यवर्मन का रहा। कुछ काल बाद उत्तरी भारत में संकट के बादल चौहान व गहड़वाल वंश पर मंडराने लगे। मुहम्मद गौरी के आक्रमणों की वजह से, तत्पश्चात् उसके गुलाम कुतबुद्दीन ऐवक[5] के आक्रमणों से उक्त

१. आर्कियोलोजिकल सर्वे आफ इंडिया, भाग २, पृष्ठ ४५३
२. डी० एच० एन० आई० भाग २, पृष्ठ ७५०
दि स्ट्रगल फार एम्पायर, पृष्ठ ५८
३. गजेटियर आफ इंडिया उत्तर प्रदेश, झांसी (१९६५) पृष्ठ २३
४. वही, पृष्ठ ३३ ३४
५. वही, पृष्ठ ३५-३६ (व) प्राचीन भारत का इतिहास, डा० बी० सी० पांडेय चतुर्थ खण्ड,

वंशों का पतन हो गया, तब इसके बाद चंदेल वंश की स्थिति संकटपूर्ण हो गयी। कुतबुद्दीन ने आक्रमण किया। आक्रमण का समय १२०२ ई० है। फरिश्ता[1] ने भी इस तथ्य का उल्लेख किया। बहुत दिवसों तक चंदेल राजा परमर्दिदेव (परमाल) ने अमित धैर्य और वीरता से कुतबुद्दीन के आक्रमण का सामना किया, किन्तु अन्ततः उसने आत्मसमर्पण कर दिया। इसी समय उसकी मृत्यु हो गयी। उसका दीवान अजयदेव युद्ध जारी रखने के पक्ष में था। उसने हथियार नहीं डाले और लड़ता रहा, पर कालंजर किले में जल की कमी ने उसे भी आत्म समर्पण के लिये नैतिक रूप के बाध्य कर दिया। कालंजर पर कुतबुद्दीन का अधिकार हो गया।[2] कुछ वर्षों बाद जेजाकभुक्ति पर (चंदेरी राज्य को, कुछ काल को छोड़कर जहाँ बाबर के समय मेदनीराय का आधिपत्य था) नये वीरों बुन्देलों का राज्य स्थापित हो गया।[3] अभिनव शासकों ने (ललितपुर जनपद सहित) जेजाक भुक्ति को 'बुन्देलखंड' की संज्ञा से अभिहित कर दिया।

—नेहरू महाविद्यालय, ललितपुर, उ० प्र०

१. वही, पृष्ठ ३६
२. प्राचीन भारत का इतिहास—डा० वी० सी० पांडे, पृष्ठ १८ (चतुर्थ खण्ड)
३. आर्कियोलोजीकल सर्वे, भाग २, पृष्ठ ४५५

कहानी

खामोश सफर / ओम वर्वेल

वह दिसम्बर की एक रात थी, ठिठुरती सर्दी वाली। मौसम के लिहाज से उसे लौटने में काफी देर हो गई थी। उसने बहुत धीमे से कुण्डी बजाने के इरादे से किवाड़ों पर हाथ रखा, तो पाया कि वे सिर्फ उढ़के हुए थे। आहिस्ते से किवाड़ खोलने के बाद उसकी निगाह जीने की सबसे ऊपरी सीढ़ी पर कमरे से पड़ने वाली रोशनी के उस पीले चकत्ते पर ठहर गई जिसे प्रायः हर रोज ही देखते रहने के बावजूद वह खुद को उसका आदी नहीं बना पाया था। रोशनी उसे बुरी नहीं लगती, लेकिन, 'हरचीज का एक समय तो होता ही है,' उसने अपनी परेशानी की शिकायत जैसे खुद से ही की। (रोशनी, रोशनी रहे, यह कितनी प्राकृतिक और सरल सी बात है, लेकिन रोशनी, जैसा कि उसने शिद्दत के साथ महसूस किया, अगर भाषा बन जाये तो ?) रोशनी द्वारा फेंकी गयी एक चिट पर कोई गूढ़-सी चेतावनी पढ़कर उसने जैसे अपने आप को खबर दी "छोटी बहिन पढ़ रही होगी।' फिर आहिस्ते से सटकनी बन्द करके वह दबे पाँव सीढ़ियाँ चढ़ने लगा।

कमरे में, जो बैठक का भी काम देता है, पहुँचते ही उसकी नजर सामने की अलमारी में रखी अलार्म पीस पर पड़ी। साढ़े दस बज रहे थे। उस सन्नाटे में घड़ी की टिक-टिक उसे जैसे किसी अदृश्य कठघरे के खड़ा करके कोई अनजाना अपराध कन्फैस कराने के लिये उसे सख्ती के साथ लताड़ रही थी। बहिन ने इस बीच एक उचटती सी नजर उस पर डाल कर फिर से अपना चेहरा अपनी किताब में करीब-करीब छुपा लिया था। वह बहिन की जागरूक उपस्थिति को महसूस करते हुये एक अपराध बोध से भरता जा रहा था। सिर छुपाये पढ़ती हुई बहिन उसे घर के द्वारा अव्यक्त रूप से अपने ऊपर लगाये जाने वाले गैरजिम्मेदारी के आरोप की प्रतिमूर्ति की तरह लगी। 'एक निरीह सी आकृति, जिसकी एक आंख सब कुछ देखती है और दूसरी-सपाट प्रतिक्रियाहीन। एक करुण सा चेहरा, जिस पर की तमाम अभिव्यक्तियों को किसी अदृश्य कुटिल हाथों ने भद्दे तरीके से लीप कर मिटा दिया हो, मगर जो फिर भी अभी जड़ न बन पाया हो।'

उसने एक छटपटाहट के साथ महसूस किया कि कैशोर्य के अंतिम कगार पर खड़ी आम हिन्दुस्तानी लड़कियों की तरह उसकी इस बहिन को भी अपनी एक मात्र नियति की प्रतीक्षा थी। एक खास उम्र को पार कर गयी मुहल्ले की जिन लड़कियों को लेकर पड़ोस की बड़ी-बूढ़ियाँ चिंतित स्वर में फुस-फुसाती और बतियाती थीं, उनमें से उसकी बहिन भी एक थी। 'और फिर बदशक्लियत तो 'वीकर सैक्स' के साथ प्रकृति का क्रूरतम अन्याय है' उसने आहत भाव से सोचा, फिर दहेज के द्वारा भी किसी प्रकार यह क्षतिपूर्ति कर पाने की संभावना को फिलहाल अपने लिए निषिद्ध मानकर बुझसा गया।

अचानक उसे ख्याल आया कि वह बेवजह ही खड़ा हुआ है। वह सकपका-कर तख्त के एक कोने पर बैठकर जूतों के तस्मे खोलने लगा। इस बीच उसने कमरे में काफी सटाकर बिछायी गई चारपाइयों पर एक सरसरती निगाह डाली। उसके जेहन में पिछलों रात का वह एहसास फिर से सजीव हो उठा, जब वह इन्टरव्यू से लौट कर आया ही आया था।

'कोई तकलीफ तो नहीं हुई ?' पिता के इस आत्मीय प्रश्न से बातचीत का सिलसिला शुरू हुआ था। उसे अच्छी तरह से याद आया था कि हर बार इन्टरव्यू मे लौटने पर पिता का पहला प्रश्न यही होता है...इसी स्वर में। इस प्रश्न को उसने 'नहीं' वाले दो अक्षरी उत्तर से सहलाया या टाला था, चूंकि डिब्बों की भीड़ और यात्रा के दौरान सो न पाने जैसी कुछ तकलीफों का जिक्र किया था। मन ही मन उसे डर बना रहा था कि 'तकलीफ' की जगह कहीं 'दर्द' का प्रयोग न हो जाय, क्योंकि तब तो, जैसा कि उसे लगता था, घबराहट के मारे उसके पास एक अक्षर का भी कोई उत्तर नहीं होगा।

इस ठंडे संवाद को उसने अपनी प्रौढ़ होती समझदारी का सबूत देने के लिये एक उपयोगी विचार को सामने रख कर विराम देना चाहा था कि दूर के शहरों में एप्लाई करना व्यर्थ है, क्योंकि इसमें सिवाय यात्राव्यय के कोई अच्छी उम्मीद तो की ही नहीं जा सकती। लेकिन अपने इस विचार में उसका खुद कोई विश्वास नहीं था और पिता की मुद्रा से भी उसे स्पष्ट लगता था कि वे भी उसके शब्दों की निरर्थकता को महसूस करते हुये चुप थे। सम्वाद खत्म हो जाने के बाद उसे तुरन्त लगा था कि जैसे पूरी बात चीत की चिन्दियाँ पिता, माँ मूक पड़े हुये छोटे भाई बहनों और स्वयं उसकी निश्वासों की गर्म हवा से कमरे की निस्तब्धता में इधर से उधर उड़-उड़ कर चकराते हुये गिर रही हों।

वर्तमान क्षण में लौटते हुये उसने एक बार फिर सभी चारपाइयों पर एक उदास नजर डाली। उसे यकीन न लगा कि अभी कोई सोया नही है,

बल्कि कमरे में व्याप्त चुप्पी एक ऐसी जड़ता है, जिसमें उसके परिवार का प्रत्येक सदस्य समाया हुआ है।

एक भावुक सी आकुलता उसे कचोट गई। काश, कोई छोटी-सी ही खुशी भरी बात उसके पास होती, जिससे वह इन परस्पर असंपृक्त छायाओं को माँ, पिता, भाई और बहिनों को व्यक्तित्ववान आकृतियों में रूपायित होते देख पाता। वह विशेष रूप से पिता के प्रति गहराई से संवेदित हुआ, जिनके झुर्रियों भरे चेहरे पर उसने एक सहज हँसी तभी से नहीं देखी थी, जबसे नौकरी के लिये उसके साक्षात्कारों का सिलसिला लम्बा खिचना शुरू हुआ था। 'लेकिन फिलहाल मैं क्या कर सकता हूँ ?' एक तिक्त असमर्थता से उपजा उसका सवाल उसी के अंधेरे मे फिर भटक गया। उसे महसूस हुआ जैसे उसके मन और मष्तिष्क में एक कसैला सा धुँआ भरता जा रहा हो।

[इन्टरव्यू के पूर्व ही वहाँ की धाँधली के बारे में फुसफुसाहट भरे चर्चे .. इन्टरव्यू लेने वालों के उपेक्षापूर्ण रवैये....निराशाजनक स्थितियां . उन सब के गर्भ से जन्मा ऊबा मन, अपने भीतरी अंधेरों के साथ खामोश सफर करता हुआ। लेकिन वापसी के सफर में इस बार एक भयावह आशंका उसके दिमाग को बराबर हाँट करती रही थी कि....?]

उसकी घुटी-घुटी सी निगाह कमरे की सीलिंग तक उठी। कमरे में भरी हुई उस बीमार-सी पीली रोशनी में उसे लगा कि कोई एक मनहूस खामोशी अबाबील की तरह सारे कमरे में चक्कर काट रही है—उसे और-और थकाती, उसकी उपस्थिति और-और निरर्थक करती हुई।

फिर निरुद्देश्य-सा वह छज्जे को पार करके अपने कमरे में आ गया। उसे तीव्र अहसास हुआ कि जैसे वह अबाबील उससे पहले ही इस कमरे में भी प्रवेश करके मड़राने लगी थी। बत्ती शायद उसके द्वारा बुझाये जाने की प्रतीक्षा में जल रही थी। पत्नी एक गठरी की शक्ल में अपनी चारपाई पर पड़ी थी, संभवत. सो ही रही थी। उसे पत्नी की यह आदत इस समय बुरी नहीं लगी, अगर जागने की कोई खास वजह नहीं है तो...।

कपड़े बदलने के बाद उसे ख्याल आया—'अभी खाना भी खाना है। अपनी और पत्नी की चारपाइयों के बीच खाली पड़ी जमीन पर बैठकर उसने अपनी चारपाई के नीचे से उस बड़ी सी पतेली को आहिस्ते से उठाया, जिसे एहतियात से एक अलम्युनियम के ढक्कन से ढककर रखा गया था। ढक्कन हटाने पर उसने कुछ रोटियों के ऊपर जमा कर रखी गयी चिनी मिट्टी की प्याली को उठाया, जिसमें हमेशा की तरह उसने समझा कि दाल होगी,

लेकिन अंगुली से हिलाने पर उसने पाया कि सब्जी थी। बाकायदा कुछ आलू के टुकड़े उसकी तलहटी में पड़े थे। रोटियाँ उठाकर उसने उस ढक्कन पर रख ली, फिर बैठे-बैठे अपने दाहिने तरफ की चारपाई पर पड़ी पत्नी का हाथ पकड़ कर हिलाया तो पाया कि वह सो नहीं रही थी। उसने फुसफुसाते हुये उससे एकाध रोटी खा लेने का आग्रह किया, लेकिन पत्नी ने लेटे ही लेटे इन्कारिया लहजे में अपना सिर हिला दिया और फिर निश्चेष्ट हो गयो।

खाने के दौरान उसके दिमाग में एक रात पहले की कुछ घटनायें अपने जटिल संदर्भों के साथ कौंधने लगी। कल लगभग इसी समय वह अपने कस्बे के स्टेशन पर ट्रेन से उतरा था। वह एक बहुत दूर के शहर से इन्टरव्यू देकर लौट रहा था। इण्टरव्यू के पूर्व ही वहाँ की धांधली के बारे में अलग-अलग स्थानों से आये हुये तथा कुछ स्थानीय प्रत्याशियों के बीच अटूट रूप से चल रहे फुसफुसाहट भरे चर्चे या अपने आदमियों को छोड़कर शेष सभी प्रत्याशियों के प्रति इन्टरव्यू लेने वालों के उपेक्षापूर्ण रवैये तथा ऐसी ही अन्य तमाम निराशाजनक स्थितियों ने उसे उबाया तो खूब था, किन्तु अब तक काफी तजुर्बा हो जाने की वजह से वह असहज होने से बचा रहा था। एक अवश भाव से सब कुछ स्वीकार करते जाने की उसकी आदत सी बन चली थी। लेकिन वापिसी के सफर में इस बार एक भयावह आशंका उसके दिमाग को बराबर हाँट करती रही थी कि…? 'हाँ मगर एक बात है', अंत में उसने दूसरे पहलू से सोचा था कि घर उसकी निरन्तर असफलता के बाद भी उसकी उपेक्षा कर पाने में असमर्थ है। कम से कम एक पारिस्थितिक आपसी समझ का रिश्ता तो उसके और घर के बीच मजबूती से कायम था ही कि वर्तमान परिस्थितयों में किसी बेहतर परिवर्तन की संभावना, किसी सुखद भविष्य की बची हुई कोई उम्मीद अगर थी भी, तो वह अनिवार्य रूप से उसी के द्वारा मूर्त्त हो सकती थी।

फिर क्रमश: गहराते सोच में, उसके मन के एक अंधेरे और शांत कोने में पिता के चेहरे की स्मृति एक दीप की तरह जाग गई थी। उसने सहज उल्लास के साथ महसूस किया था कि पिता और उनकी प्रमुखता में समाहित एक प्रकार से पूरा परिवार ही सारी समस्याओं के लिये उसे ही पूर्णतया दोषी नहीं समझता था। उसके अनवरत प्रयत्न उनकी निगाह में उसे निर्विवाद रूप से निर्दोष साबित करने में समर्थ थे।

गाड़ी से उतरकर तह किया हुआ कम्बल अपने कंधे पर डाले, हाथ में अटैची उठाये हुये वह प्लेट फ़ार्म से बाहर निकल आया था। टूसीटर और तांगे वालों की स्वाभाविक छेड़छाड़ और सवारियों की भीड़भाड़ से बचता

हुआ वह सड़क के एक अंधेरे कोने में जाकर खड़ा हो गया था और अपनी जेब में बाकी बचे हुये पैसों को टटोल कर हिसाब लगाने लगा था।

नगर-भवन के चौराहे पर जब वह टू-सीटर से उतरा तो सन्नाटा था। चौराहे की ट्यूबलाईट बुझी पड़ी थी। मटमैली चाँदनी में नगरपालिका की परिचित इमारत उसे रहस्यमय सी लगी थी। एक दो क्षण ठिठके रहने के बाद वह जगह-जगह से उखड़ी हुई सड़क छोड़ कर एक किनारे से चलने लगा था। उसे यह अच्छा लगा था कि जाड़े के कारण आवारा और पालतू कुत्ते कहीं न कहीं दुबके हुये पड़े थे। सहसा सड़क के एक बिना टोंटी वाले नल से गिरती हुइ पतली जलधार ने उसका ध्यान आकर्षित किया, तो उसने पाया कि वह घंटों से प्यासा चला आ रहा था। साथ ही उसे यह भी लगा कि इतनी रात गये घर पहुँचने पर एकदम पानी माँगना कुछ अजीब भी लगेगा। अटैची सड़क पर रखकर उसने भरपेट पानी पिया था।

अटैची उठाकर वह फिर चल पड़ा था। घर अब अधिक दूर नहीं रह गया था। उसने घर पहुँचने पर परिवार की अपने प्रति संभावित प्रतिक्रियाओं के बारे में पूर्वानुमान लगाना चाहा, लेकिन उसने पाया कि वह अपनी अनुपस्थिति में घर पर अक्सर घट जाने वाली किन्हीं न किन्हीं दुर्घटनाओं के बारे में सोचने लगा है। अचानक उसे तीव्रता के साथ आभास हुआ कि इस बार उसके घर का पाइप का कनैक्शन कट गया होगा। उसे याद आया था कि जल-कल वाले कुछ ही दिनों पहले इस कार्रवाई की चेतावनी देने आये थे। हालाँकि पिता ने कुछ न कुछ 'इंतजाम' कर पाने की बात कही थी, लेकिन वह जानता था कि पिता भीतर ही भीतर स्वयं आश्वस्त नहीं थे। एकमुश्त इतना पैसा जुटा पाना अपनी निरंतर गिरती हुई साख के कारण उनके लिए असंभव ही था।

यह आंशका उसके दिमाग पर इतनी बुरी तरह से हावी हो गई थी कि वह घर पहुँचने पर इण्टरव्यू संबंधी बातचीत के समय होने वाली तमाम संभावित प्रतिक्रियाओं से निपटने के लिए अपने आप को पूरी तरह तैयार करने की जरूरी योजना ही भूल गया था।

दरवाजे से लगभग पचास कदम की दूरी रह जाने पर उसने मन ही मन तय किया था कि वह चबूतरे की तीनों सीढ़ियों को करीब-करीब फलांगते हुए पार कर लेगा और इस प्रकार कम से कम इस वक्त तो अपने आप को पाइप के मीटर वाली जगह देखने से बचा लेगा। हांलाकि "अभी नहीं तो सुबह, देखना तो उसे पड़ेगा ही।' इस विरोधी विचार ने उसकी उस तात्कालिक योजना को चुभती चुनौती दी थी। फिर अचानक उसके जजबाती सोच को चीरकर एक बात उसके दिमाग में रोशनी की तरह फैल गयी थी

कि 'वस्तुस्थिति की उपेक्षा करके उससे बचा नहीं जा सकता।' इस ख्याल के साथ ही उसने स्वयं को आश्चर्य जनक रूप से सहज महसूस किया था। दरवाजे की पहली सीढ़ी पर चढ़कर उसने इत्मीनान से अटैची को चबूतरे पर रख दिया था और फिर उस धीमे अंधेरे में उसने भीतर के निश्चित स्थान खाली जगह को टटोल कर अपनी आशंका की पुष्टि कर ली थी। क्षण भर के लिए उसे लगा था कि जैसे किन्हीं अदृश्य हाथों द्वारा जल की सतह पर धीरे से छोड़ दिया गया कोई वजनी पत्थर तेजी से जल की तलहटी में उतरता गया हो और सतह पर कोई हलचल नहीं हो।

इसी क्षण अचानक अल्मूनियम के उस खाली ढक्कन की हल्की-सी आहट से उसकी विचार-तन्द्रा टूटी तो उसने पाया किया उसकी अँगुलियों रोटी टटोल रही थी, जबकि खाने का अंतिम नेवाला अभी अभी उसने अपने मुँह में रख लिया था। पत्नी की चारपाई के नीचे रखे हुये लोटे को उठाकर उसने पानी पिया, फिर बर्तनों को इकट्ठा करके आहिस्ता से एक ओर सरकाकर उठ गया।

बत्ती बुझा कर जब वह लेटा, उस समय थाने में ग्यारह की गजर बजी थी। 'अब नींद तो आने से रही' उसने खिन्न होते हुए मन ही मन कहा। उसका कई बार का अनुभव था कि सर्वाधिक असहाय वह तभी होता है, जब समस्याएँ नहीं, बल्कि उनके प्रेत उसे चारों ओर से घेरे हुए होते हैं।

उसने सहज होने की कोशिश करते हुए मन ही मन धीरे-धीरे गिनती गिनना शुरू किया। एक दो तीन···चार पाँच और अप्रत्याशित रूप से इस अंतिम अंक ने उसके जेहन में एक रोंएदार भयावह पंजे की शक्ल अख्तयार कर ली। भरसक प्रतिरोध के बावजूद वह इसकी गिरफ्त में जैसे कसता चला गया। उसे याद आया कि किस तरह इस बार के चुनाव-परिणाणों से उसके पिता की निचुड़ी और सूखती हुई सीमित राजनीति फिर से हरी होने लगी थी। चुनाव की सरगर्मियों में घर की छत पर पार्टी का झण्डा लगाने की बात पर उसने पिता को अदूरदर्शी ठहरते हुए उनसे काफी तीखी बहस की थी, लेकिन अपने समर्थकों के बावजूद अतन्त उनकी जिद के आगे वह चुप हो गया था। चुनाव परिणामों के तुरन्त बाद पिता ने इस बात पर गर्व महसूस किया था कि उन्होंने विजेता पार्टी का झंडा पहले से ही अपनी छत पर लगाकर पार्टी के प्रति अपनी असीम और अटल निष्ठा का सबूत दिया था। बाद में उसने पाया था कि क्षेत्रीय राजनीति में व्यक्तिगत अस्तित्व के नुमाइंदों की तरह ऐसे झंडे बस्ती की तमाम छतों पर फहरा रहे थे। उसे कई ऐसी छतें भी विशेष रूप से याद आईं, जिन पर चुनाव-परिणामों के अनुसार चुपचाप झंडे बदल लिए गये थे।

कुछ देर तक तरह-तरह के नारों से रँगे हुए पोस्टर्स उसके जेहन में फड़फड़ाते रहे, वोट फॉर···आपात काल की काली···डेमोक्रेसी····आदि-आदि।

पता नहीं मन के किस कोने में दुबकी हुई ऊब उसने अपने भीतर ही भीतर बकलाते से ऊपर की ओर उठती हुई महसूस की। काफी देर तक एक बदता की स्थिति में पड़ा-पड़ा वह अपनी ही रूह को देखता रहा, जो उसके निजी जीवन की उन चक्करदार गलियों में भटक रही थी, जिनमें अंधेरा छाया था और फिर भी जिनकी धूल तपी हुई थी!

सहसा सन्नाटे को चीरती दो के गजर की आवाज उसके कानों में पड़ी और वह चौंककर सचेत हुआ। उसने पाया कि तीव्र प्यास के कारण उसका गला एकदम खुश्क हो चुका था। चारपाई के नीचे से टटोलकर उसने लोटा उठाया और उसमें बचा सारा पानी पीकर फिर लेट गया।

फिर सहज ही उसने घुटी-घुटी सी आवाज में पत्नी को उसका नाम लेते हुए पुकारा। उसे लगा कि जैसे एक लंबी खामोशी के कारण उसका स्वरतंत्र अपना फंक्शन भूल गया हो। उसकी भीतरी मंशा भी नहीं थी कि पत्नी जाग जाए, क्योंकि ऐसी कोई कामकाजी अथवा प्रेमालाप-पूर्ण बात उसके दिमाग में फिलहाल नहीं थी, जो पत्नी के साथ बातचीत का रूप ले पाती।

उस घुप अंधेरे में भी वह अपनी जवान पत्नी के चेहरे का पीलापन महसूस करने लगा ··'यह चेहरा उनमें से एक है, जो सच्चे और हमदर्द खबरनवीस की तरह होते हैं', उसने सोचा। पत्नी के न जाने कब से शुरू हो गये अविराम खर्राटों की लय में डूबते हुए उसने राहत महसूस की। उसे लगा कि कम से कम इस वक्त तो पत्नी उससे पूरी तरह निरपेक्ष होगी। अपेक्षाएँ व्यक्ति को किस कदर जड़ और जहरीला बना देती है, उसने अनुभव किया। उसने क्षण भर केलिए एक सुखद कल्पना की कि गहरी नींद में डूबी पत्नी की आँखों में इस समय न कोई वर्जना होगी और न याचना और न मखौल। उसका मन हुआ कि बत्ती जलाकर वह पत्नी के चेहरे को देखे, किन्तु सहसा इस आशंका से उसका मन बुझ गया कि वह कहीं जाग न जाए।

काफी देर तक उसकी स्मृति में ऐसी तमाम परिचित और अपरिचित जागती हुई आँखों के जोड़े उभरते रहे, जिनमें उसने वहशियत या चालाकियां शिकायत या नफरत अथवा यातना की स्पष्ट छापदेखी थी। उसने ऐसी ही एक जोड़ी आँखों को अपने स्मृति-पटल पर ठहर जाने दिया। उसे निश्चित रूप से याद आया कि ये सिलैक्शन कमेटी के अध्यक्ष की आँखें थी, जिन्हें उसने इण्टरव्यू देते समय काफी निकट से देख लिया था। उसके सख्त चेहरे के रोबीलेपन के साथ उन आँखों की चालाकी भरी चमक और भी तीव्र हो

गयी थी । उसे एक्सपर्ट्स की वे दो जोड़ी आँखें भी याद हो आई जिनमें आपसी इशारेबाजी, काईयांपन और प्रत्याशियों के प्रति आक्रामकता और वितृष्णा की स्पष्ट झलक थी । और वे आँखें ·· उफ् वह रोमाञ्चित हो गया । एक महानगर के रेल्वे प्लेटफार्म की एक बेंच पर बैठी हुई उस फटेहाल छोटी लड़की की आँखें उसने बहुत करीब से पढ़ी थीं । एक खिलौने वाले के ठेले पर सजे आकर्षक खिलौनों की ओर देखकर बार-बार जितनी तेजी से उसकी आँखों में ललक उठती थी, उतनी ही शीघ्रता से बुझ जाती थी ।

अचानक पाँच की गजर उसे सुनाई पड़ी, तो वह खिन्न होकर मन ही मन बुदबुदाया 'पूरी रात ही बर्बाद हो गयी ।' किसी भी प्रकार के सोच से बचने की कोशिश करते हुए उसने कुछ ही देर सो लेने का विचार किया । तभी अचानक घर के पिछवाड़े दुबे जी के बाड़े के नीम पर किसी कौए ने अपना गला साफ किया और एक फटा हुआ उदास स्वर उस निस्तब्ध वातावरण में छोड़ दिया । यह विवादी स्वर उसे इतना कर्कश लगा कि बेचैनी में वह बिस्तर से उठ गया और सहज होने के लिए उसने बत्ती जला दी ।

नीरवता भंग होने से, पत्नी के साथ बगल में कुछ उघरी पड़ी बच्ची कुनमुनाई , तो पास पहुँच कर वह उसे उठाकर थपकाने लगा । फिर अनायास उमड़ आई ममता ने उसे धीरे से बच्ची के माथे पर झुका दिया । क्षण भर के लिए ही सही वह एक कोमल सुखद अनुभूति से भर गया ।

सहसा बैठक से आई पिता के द्वारा प्लास्टिक के अपने फटे हुए जूतों में पैर फँसाने की आवाज से वह सावधान हुआ । इस आवाज ने उसे फिर मर्माहत कर दिया । एक क्षण के लिए वह किंकर्तव्यता की स्थिति में ठिठक खड़ा रहा । फिर अचानक इस ख्याल से सुबह-सुबह पिता को कुछ अस्वाभाविक न लगे, उसने बत्ती बुझा दी और शीघ्रता से किन्तु बिना किसी आहट के अपने कमरे से निकलकर कंधों पर से कम्बल लपेटते हुए दबे पाँव ऊपर वाली छत की सीढ़ियाँ चढ़ने लगा ।

—बाजपेई पुरा, मऊरानीपुर, झांसी

छत्रप्रकास के पाठ-निर्धारण पर एक टिप्पणी /

डॉ० नर्मदाप्रसाद गुप्त

'छत्रप्रकास' अठारहवीं शती का ऐतिहासिक वीरचरितकाव्य है, जो मध्ययुगीन वीर प्रबंधों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण है । सबसे पहले डब्लू० आर० पाग्सन ने सन् १८२८ ई० में इसका अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित करवाया था और फिर सन् १८२९ ई० में मेजर प्राइस ने मूल ग्रंथ का प्रकाशन फोर्ट विलियम कॉलेज कलकत्ता से कराया । १९०३ ई० में बाबू श्यामसुन्दर दास द्वारा संपादित छत्रप्रकास काशी नागरी-प्रचारणी-सभा से निकला और १९१० ई० में उसी का दूसरा संस्करण मुद्रित हुआ । १९७३ ई० में डा० महेन्द्र प्रताप सिंह ने ऐतिहासिक दृष्टि से संपादित कर उसे नये रूप में प्रकाशित किया । नवीनता यह है कि उन्होंने प्रथम आठ अध्यायों में क्रम-परिवर्तन कर दिया है, क्योंकि कथा के तारतम्य के लिए यह आवश्यक था । इस संबंध में विशेष ऊहापोह का अवकाश नहीं है, पर इतना निश्चित है कि छत्रप्रकास की सभी हस्तलिखित प्रतियों में वही क्रम मिलता है, जो काशी की प्रति में है और कुछ प्रतियों में, जो मुझे देखने को मिली हैं अध्यायों या प्रकासों का विभाजन नहीं है । संभवतः कवि को यह विभाजन अभीष्ट नहीं था, इसलिए उसने अध्याय के अन्त और प्रारम्भ को केवल एक दोहे से संबद्ध किया है । दूसरी बात यह है कि रचनाकार दो कथाओं की सम्बद्धता विषय वस्तु के प्रमुख सूत्रों, ऐतिहासिक क्रम एवं विशिष्ट शैली पर आधारित करता है । छत्रप्रकास के कवि ने चम्पतराय की कथा द्वारा नायक के जन्म और उसके पूर्व की विविध परिस्थितियों को स्पष्ट किया है । बुन्देल-वंशावली के वर्णनोपरांत वह मुख्य कथा-छत्रसाल की जन्मकथा-पर आ जाता है और पाँचवें से लेकर आठवें अध्याय तक की कथा को 'कछू कथा', 'एक और अब सुनो कहानी', 'धनि चंपति की रुचिर कहानी' कहकर एक विशेष कथा-शैली में गूंथ देता है, जैसे बालक छत्रसाल को कहानी सुनाई जा रही है । डॉ० सिंह ने इस साहित्यिक कथा-शैली पर ध्यान न देकर केवल ऐतिहासिक

क्रम को सब कुछ मान लिया है। यदि ऐतिहासिक घटना-क्रम से भी देखा जाय, तो परिवर्तित सातवें अध्याय में रखी गई जन्मकथा के पूर्व ही न जाने कितनी बाद की घटनाएँ वर्णित कर दी गई हैं, जो कि तीसरे से आठवें तक के अध्यायों में निहित है। छत्रसाल के जन्म के पूर्व ही छत्रसाल का पिता का दर्शन, आखेट करना, युद्ध के लिए उत्साहित होना ज्ञानशाह के गाँव जाना आदि संबंधी घटनाएं उन अध्यायों में समाविष्ट हैं, जो कि एक इतिहासकार को खटक सकती हैं। स्पष्ट है कि कवि इस परिवर्तन को उचित नहीं समझता था, नहीं तो वैसा ही क्रमबद्ध पाठ रखता। इस आपत्ति के बावजूद महेन्द्रप्रतापसिंह के पाठ-क्रम को ही मान लिया जाए, तो छठवें अध्याय तक पाठक को कथानायक के दर्शन नहीं होते और वह निराश होकर थक जाता है, फिर इसका उत्तरदायित्व सम्पादक का हो जाता है।

छत्रप्रकास की पाठ-समस्या के संबंध में मेरा विचार है कि उपर्युक्त सम्पादनों में जिन पाठों को ग्रहण किया गया है, वे सभी दोषपूर्ण हैं। डा० महेन्द्र प्रतापसिंह का मत है कि इतिहास की उपेक्षा करने से पाठ की समस्या हल नहीं हो सकती। यह सही है, पर साहित्य या काव्यत्व की उपेक्षा भी उचित नहीं है। डा० सिंह ने ऐतिहासिक संदर्भों पर जोर देते हुए इतिहासकार के दायित्व का निर्वाह किया है, यह अनिवार्य भी था, किन्तु इतिहासकार के साथ साहित्यकार की दृष्टि नितांत अपेक्षित है। उन्होंने अपने पाठ सम्पादन में तीन आग्रही पाठ-कुलों की प्रतियों को स्थान दिया है—(अ) पन्ना कुल की प्रतियाँ, जिनमें कुछ अंश छोड़ दिया गया है (ब) दतिया कुल की प्रति, जिसमें अध्याय के अध्याय ही जानबूझकर अलग कर दिये गये हैं, और (स) धामी कुल की प्रति, जिसमें स्वामी प्राणनाथ के कतिपय चमत्कारों को जोड़ दिया गया है, परन्तु इन तीनों कुलों की प्रतियों के अतिरिक्त ऐसी प्रतियाँ भी हैं, जिनमें प्रतिलिपिकार का कोई आग्रह नहीं है। ऐसी एक प्रति मुझे मिली है, जिसमें कुल २४ अध्यायों तक की कथा है तथा जिसमें पन्ना एवं दतिया कुल का छोड़ा हुआ अंश भी है और धामी कुल की प्रतियों जैसा जोड़ा अंश नहीं है। इस प्रति का पाठ अधिकांशतः शुद्ध हैं और इसमें काशी के संस्करणों तथा डा० सिंह के संस्करण में छूटे हुए पाठों को स्थान मिला है। तात्पर्य यह है कि छत्रप्रकाश के सम्पादन की आवश्यकता अब और अधिक बढ़ गई है।

मैंने नागरी प्रचारिणी-सभा के और डा० महेन्द्रप्रतापसिंह द्वारा संपादित पाठों के कतिपय अंशों का मिलान किया है, जिसमें से कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं। प्रथम अध्याय में पृ० २ पर हियो (काशी) के स्थान पर हृदय किया गया

है, जो अनावश्यक है इसी प्रकार त्यौंही के स्थान पर तब ही अन्तःअनुप्रास दृष्टि से उचित नहीं है, घनश्याम की जगह घनस्यामसाहि रखने से मात्राएँ बढ़ जाती हैं और लय में बाधा पड़ती है। ऐसे उदाहरण तो डा० सिंह के पाठ में भरे पड़े हैं। अर्थ की दृष्टि से प्रथम अध्याय के ही एक दो स्थल पर्याप्त हैं—

(१) भाष्यो जात न जासु जस, ऐसो उदित दिनेस। (काशी)
भाष्यो जगत जासु जस, ऐसो उदित दिनेस (दिल्ली-डा० सिंह)
(२) छिति पर पर्‌यो छलकि छबि जाग्यो। (काशी)
छिति पर पहुँच छलकि छबि जाग्यो। (दिल्ली)

पहले उदाहरण में काशी का पाठ उचित है, जिसे स्पष्ट करना आवश्यक नहीं है, किन्तु दूसरे उदाहरण में पर्‌यो और पहुँच का अन्तर समझना जरूरी है। रुधिर-बुन्द के लिए भूमि पर 'पर्‌यो' (पड़ा हुआ) 'पहुँच' की अपेक्षा अधिक सार्थक है। ऐसे अन्य उदाहरण अनेक हैं, जो सिद्ध करते हैं कि पाठ-निर्धारण में केवल ऐतिहासिक स्थलों पर ही ध्यान दिया गया है। कुछ और प्रस्तुत हैं—

(१) छत्र धर्म-धुर को रखवारो (काशी)
धत्र धर्म धर को रखवारो (दिल्ली)
(२) गढ़ की सीवन दाब न पावै (काशी)
गढ़ की सीवना छवन न पावै (दिल्ली)
(३) दाग देत घटिका इक बीती। गोरें खनत रातिसब रीती। (काशी)
दाग देत घटिका इक बीती। गोरें खनत सबरात बितीती। (दिल्ली)

(१) उदाहरण में धत्र मुद्रण की भूल है, पर धुर के स्थान पर धर का प्रयोग अर्थ हीन है। (२) में सीवन (सीमा) दावना एक लाक्षणिक उक्ति या मुहावरा है, पर छवन शब्द में वह व्यंजकता नहीं है। (३) में रात सब रीती में रात का खाली होना या रात रूपी पूँजी का चला जाना निराशा और क्षोभ को व्यक्त करता है और बितीती किसी व्यस्त कार्य में लगने का बोधक है। इस प्रकार अनेक स्थलों में काशी संस्करण का पाठक अर्थ-व्यंजक है। डा० महेन्द्र प्रतापसिंह ने भाषा की प्रकृति और व्यंजनाशक्ति को परखने की अधिक चिन्ता नहीं की, लेकिन उन्होंने इतिहास-शोध द्वारा ऐतिहासिक और भौगोलिक नामावली को शुद्ध कर दिया है। यह अलग बात है कि कहीं-कहीं उपयुक्त जानकारी न मिलने के कारण वे किसी शब्द को उचित रूप में स्पष्ट न कर सके हों। उदाहरण के रूप में चौदहा की पाद-टिप्पणी में उन्होंने उसे सैनिकों का एक कबीला माना है अथवा एक विशेष सरदार। वास्तव में चौदहा गहोइ वैश्यों का एक आँकना है और उस समय का गहोई वैश्य अपने प्रदेश में वीरता के लिने प्रसिद्ध थे।

७

महाकवि कालिदास / गुणसागर 'सत्यार्थी'

तस्मिन्नद्रौ कतिचिदबला विप्रयुक्तः स कामी;
जीत्वा मामन्कनकवलय भ्रंशरिक्त प्रकोष्ठः।
आषाढ़स्य प्रथम दिवसे मेघमाश्लिष्ट सानु
वप्रक्रीड़ा पारित गजप्रेक्षणीयं ददर्श ॥
(पूर्व मेघ–२)

रसिया यक्ष बिछोई मन मुरझाय
ऊ परबत पै महंनन दये बिताय।
भये दूबरे चूरा गये ढिलयाय
सूनी भई कलइँयां उन खिसकाय।
लगो अषाढ़ और फिर चली बयार
पैलो बदरा लखतन ओट पहार।
उनई बदरिया स्यामा उड़तन देख
लगें उड़त ज्यों धूर पहारन टेक।
मद मस्ती में हांती खीसन खोद
लगे उड़ावे धूरा ऊपर कोद॥

तस्य स्थित्वा कथमपि पुरः कौतुका धानहेतो;
रन्तर्वाष्पिश्चिरमनुचरो राज राजस्य दध्यो।
मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्ययथावृति चेतः
कण्ठाश्लेष प्रणमिनि जने किं पुनर्दूर संस्थे।
(पूर्व मेघ–३)

हिय में रस-रंग पीर जगवनहार
सनमुख मेघ उवइँयंत लओ निहार।
मेघ देखतन वे मन डगमग होत
जिनकी संगिन होत न पलकन ओट।
फिर उनकी का कइये जो मजबूर
प्रिया छोड़ घर सें हैं परबस दूर
भओ कुबेर कौ सेवक मनें उदास
बादर के मिस मानों उनइ आस॥

बेसिक प्रशिक्षण विद्यालय, टीकगढ़, म० प्र०

बिट्टो रानी / मालती मड़वैया

'अटकन बटकन दही चटोकन......' खेलत-खेलत बिट्टो खों कुजने का ओरी के दोर कें अपनी भौजी खों सार में सें पकर ल्याई।

'भौजी तुम संगे खेंलो नइंतर हम रोउन लगें....

भौजी ने अपनी बारी नन्द खों पुचकारो—'बिट्टोरानी! मैं तोरे संगे खेलहों, तो तोरे भैया खों कलेउ को बनायै, फिर उनें अब्बई ताल जानें।''

....ऊं-ऊं-ऊं....रोउत भई बिट्टोने भौजी की धुतिया पकर लई। इतइ में कऊं सें बिट्टो की दूसरी बैन चट्टो कूंदत-फांदत उतै आ गई। '....हा ...हा ...हा भौजी तोयतो खेलनें परै हमाये संगे, किलक कें भौजी को कोंचा पकर लओ चट्टो नें।

'तुम औरें खेलो अटकन-बटकन ...अच्छा लो छक्का ल्यानें देत, सो छक्का खेलो। मोखों कित्तो काम डरो बिन्ना हरो, जान दो। अब्बई ओरी चिल्या परै अटाई पैसें' कत भये भौजी ने अपनी धुतिया की कोर छुड़ावे की पूरी कोसिस करी, पै चट्टो टेवनी सें हांथ पकर कें लिपट गई। अब भौजी खिसया कें भगी- 'लोवाई हरो छोड़ो तो, हमें नइं पुसात जो लाड़। कालके दिना सासरे जैओ सो का हमें उतै सोऊ गरे सें बांद लै जैओ? और छूट-छाट कें भौजी सार में जाकें फिर झट्टइं से गोबर पाथवे में लग गई।

दिन, मईना, साल ऐसइं ऐसें खेलत-खात में निकरन लगे। बिटियन खों स्यानों होबे में कौन अबेर आ लगत। बिट्टो चट्टो सोऊ भौजी की बबुरियां और ओरी के टोंडर पैर के देखतई कंदेला घालन लगीं। जिनके संगे हल्के में हुंदा खेलततीं, अब उनइं लकरन-बारन के संगे बातें करबे में सरमाउन लगीं।

दद्दा दिन भर नदियन-नखन में मछइयन खों जार डारें रत। लोलइया लगें आउत, सो उनइं मछइयन संगे घर भर की ब्याई होत। जौन दिना मछइयां नईं मिलतीं, सो रात की ब्वाई औ दूसरे दिना खावे की आफतदिखान लगत। भैया दिनमेन्त खों एक ठेकेदार के ताल में मछइयां पकरत। पै कौन

ठिकानो आय, कभऊँ मजूरी लगी और कभऊँ नई लगी। ओइ पै दो-दो मोड़ी छाती पै हतीं। बिट्टो चट्टो केहांत पीरे करबे की चिंता में दद्दा मताई खों चुनौती-सी लगन लगी। घर भर खों जेई फिकर कै अपने पेट तो मुसकिल सें भरत, इन बिटियन खों देरी बाबरें कैसें कर पाउत। ऐन कोसिस करी, पै कायेखों पन्त परत तो। हार थक कें बैठ गये, पै भाग की लीला कीनें जानी?

भओ का कै बिट्टो ऐन गोरी-ऊजरी-खबरी कैसो गारो तो हतई ती। सो साल पै एक दिना राजन केकुँवर ने देख लओ और सुदेसा घमके-बिट्टो को हात माँगबे, ऊके दद्दा नों। जा खबर आग की घाईं असफेर भरमें फैल गई और गाँव ग्योंड़े के नाते-रिस्तेदार सबई हितकारू बनकें आउन-जान लगे। चट्टो को चक्कर तो अबै बचो हतो, एक दिना लिघई के गाँव के माते खुदई बोले-कै चट्टो हमाये जेठे लरका खों ब्या दो। अच्छो घर खात-पियत हतऊ तो। दो तला को ठेका अकेले चट्टो के होबे बारे ससुर के नामें हतो तो। टीयना पांड़ेजी ने नोनी मिलाई दई ती। घूरे कैसे दिन फिर आये।

['जोन बिट्टो के सात पेरी तक बाप-दादन में सुने नइँयां, वेई सुख बिट्टो खों भोगबे मिल रये, पै नींदई नई आउत बिट्टों खों। सबरे राज में डोंड़ी पिटवा दई गई। राजभर सें बैद बुलाये गये। सबनें अपनी-अपनी तरा सें बिट्टोरानी को इलाज करबे की कोसिस करी, पै कछू असर नई। नीद नई आई।' सो नई आई फिर कबै आई उर कैसें आई, जो तबई जान परहै, जब मालती जू की कथा पोंच हो। सम्पादक]

बिट्टो की ऐन हुमक कें नौनों ठस्सा को ब्याव भओ और रैन कैसी पुतरया मताई बाप ने राज न के घरे बिदा कर दई। 'दूद कल्ला करियो बेटा'- ओरीने भर-भर गरे असीसें दईं। गाँव, तौ गाँव, असफेर भरे में सबरन ने बिट्टो के भाग सराये। भगवान जब देत है, तब ऐसई भाग पलटत।

सकरोदा को तौ घर आय। सो भ्यानई भयें ओई भड़वा तरें मताई- बाप ने चट्टो की सोई भाँवरें पार दईं और दोई बिटियन के काज सें उरसटे। पौंर-पुरा तौ सूनो पर गओ, पै मताई -बाप ने लंबी हाँस हाँसे लैकें हरदौलन खों नारियल चढ़ाओ।

करमगत टारें नई टरत। कछू तो आदमी अपने करमन सें सुख-दुख भोगत और कछू अपने सुभाव सें। सोऊ मान्स ई दुनियाँ खों सरग-नरक बनाउत।

अबजौका! अबै बिदा के अंसुअई नई सूके ते, कै चारई दिनन में बिट्टो के सासरे सें तरां तरां की खबरें आउन लगीं। चार मों चार बातें, कौन कोऊ के मों खों लगाम बा लगाई जात।

—बिट्टो खों फलो नईयाँ राजघरानो।

—कुजने का लग गओ, बाती उतै सोउतई नइयाँ।

—छाँईं सी उतर गई बिटिया की।

—कुजने का फेर लग गओ, कौन गिरानी लग गई।

कोऊ कछू कत, कोऊ कछू। बताओ, राजन के घरें काये की कमी। सबरे तरा के सुख। मुतियन कौर खावै तो खा सकत। सेवा-चाकरी खों गड़न नौकर-चाकर, खाबे खों बन्न-बन्न के पकवान राज भोग, पोड़बे हों सुखन की सेज। बड़े-बड़े मसेरी लगे व मलमन पै मखमल के कोंरे गद्दा, रोज इत्तर छिरको जात सेजन पै, खुसबूदार फूलन सें सजावट करी जात। जौन बिट्टो के सात पेरी तक बाप-दादन नें सुने नईयाँ, बेई सुख बिट्टो खों भोगबे मिल रये, पै नींदई नई आउत बिट्टो खो। सबरे राज में डोंड़ी पिटवा दई गई। राजभर सें बैद-हकीम बुलाये गये. सबनें अपनी-अपनी तरा सें बिट्टो रानी कौ इलाज करबे की कोसिस करी, पै कछू असर नई। नींद नई आई सो नई आई।

बिट्टो के दद्दा मताई खों खबर लगी, सो उनके काटो तो खून नई। बड़ी फिफर में, राम जाने का हो गओ मोड़ी खों? इतै तो भर दुपर नों सोउत ती, अब कुजनें का हो गओ? नींद काये नई आउत राम?

फनेऊ बाँद कें बिट्टो के दद्दा राजधरें पोंचे। अपनी प्रानन सें प्यारी पुतइया सें मिले, खैर-खबार की भई। बिट्टो दद्दा की छाती सें लिपट-लिपट ऐन रोई, पै रानबे कछु नईं। दद्दा ने खूब पूंछी, पै बिट्टो को एकई ऊतर—'कापतो दद्दा, मो खों तौ घरें लुआ चलो। मोरो तो जी घबरात इतै। मनई नईं लगत कछू काम में। ई करोंटा ऊकरोंटा करत रात भर जात। ई बन्न-बन्न की खुशबू सें नाक फटी जात। आखें फैल गईं, ऐन पिरातें, पै सोई नई पाउत।' अब बिट्टो के दद्दा खों कछू समझ में आई। राजन नों गये और बोले---'फिकर नईं करो दिमन त्रावजू मैं कलई ई को इन्तजाम करत। जौ तक है, मोरो उपाय सफल हुइयै जू।'

बिट्टो दद्दा अपने घरै आये। घर में मछइयन के जित्ते फटे-पुराने जार डारे ते, बिट्टो की मताई सें उनकी खूब गुंथवा कें एक मोटी शचइया सी कथरी बनवाई। सबरी कथरी में मछरांयदी बास आबै, सो इयै एक नोने उन्ना में लपेटो और पौंचे महलन में। बिट्टोरानी के मसैरी लगे चन्दन के पलका पै मखमलन के गद्दन के ऊपर घर सें ल्यायी मछरांयदी कथरी बिछा दई।

डिन्डूपतई बिट्टोरानी जैसई अपने सोउत के कोठन में बिठौना पै पोंड़ी, कै दोई घरी में ऐसें सो गई जैसें को ऊने नींद कौजादू कर दओ होय। कैऊ दिना की जगीं तौ हतईतीं, सो सोई ऐन धुरवा से बेंचकें। रातकें जब राज कुंवर साब सेजन पै पधारे, सो खूशी तौ खूब बई रानी खों घुर्राटे भरकें सोउत देखकें, पै कछरांयदी बास के मारें एक घटी ठांड़ो बई भओ गओ। साँची आय कई गई कै नरक को कीरा नरकई में मानत।

—८५४ केकरे बंगलाज, राइट टाउनट, जबलपुर

पांच छक्के / माधव शुक्ल 'मनोज'

कीसों कहूं, कौन सें रोऊँ
कोऊ नई पसीजै
सिर के ऊपर आज बिपद को
बोलै कारो कौआ
ऐसो लगै समय नें धर दओ—
धुनकी रुई पै पौआ।

•

बेकारी कौ हौआ
उड़ें कबूतर कौआ
होटल हँसें, सिनेमा नाचें
रोजई होंय बुलौआ
उपटा खाय गरीबो बीनें
भुनसारे सें मउआ।

•

जे फिकर करे के हड्डा
टोरो चाहत हैं ठड्डा
अनुमासन कौ गरो घोंटवे
वन रये सबके अड्डा
कितनऊँ आगें वढ़ो कोई फिर—
सें आऊत चौगड्डा।

पानी में पथरा फेंको—डुप्प
फिर इंदियारो देखो—घुप्प
छैला बन गुंडा गरीबें
ले छुरा कतन्ना—गुप्प
बड़े बड़े सिरमौर हो गये
आंख मूंद कें—चुप्प।

•

मजमा अच्छो खासौ
घुसकें देख तमासौ
लयें कटोरा खूब दिखावें
खावें दूद बतासौ
करिया सांप खिलावै चौपर
अजगर फेंकै पाँसौ।

—परकोटा, सागर

तनक सी बात / ज्ञानसागर शर्मा

जीव उठी
तरयै लगी
मानों कउँ एक गोली सी घली।
गाली गांव सैर कोर

आर के पार कड़ी।
बोली की गोली सुन
दुनियां के दोरें
का भओ, कैंसें भओ
दस मों दस बातें भईं
भओ सो भओ
काउ को का गओ
फूट गओ घर कौ
पुरानी एक ऐंनां
जियै कोउ अब लाख जोरें
जोरें जुरै ना।
छोटी भइ कै बड़ी
बात बस इत्ती भई
तनक सी बात
रफल पै चढ़ गई।

—नौगांव, म० प्र०

बैरन लगै चौमासे की रात / गुप्तेश्वर द्वारका गुप्त

बिन बालम बैरन लगै, चौमासे की रात।
चमकत बिजुरी बायरें, मन भीतर घबरात॥

पी पी पपिरा बोल रये, दोरें कूकत मोर।
वज्जुर सी रातें कटें, जी में उठत मरोर॥

बसकारे आंखन बसे, मन भारी उकतात।
ओट करें लेसत दिया, आसा सें बँध जात॥

आगी ऐसी बिरह की, तपे अनोले अंग।
तींते उन्ना सूक रये, देखन बारे दंग॥

—एफ डी-१७, एम० पी० ई० बी० कालोनी, रामपुर, जबलपुर

जो मचान मंदिर है मोरो हर हर है भगवान।

नवल किशोर 'मायूस'

मैं हौं एक किसान मेंहनत है ईमान।
जीमें ई मोरे भारत की सबसें ऊँची सान॥

ऐइ खेत घर द्वार है मोरो ऐइ खेत है आंगन।
ऐइ खेत कासी मथुरा है ऐइ खेत विन्द्रावन।
जौ मचान मंदिर है मोरौ हर हर है भगवान॥

वरून देवता कुआं है मोरो और देव ना दूजा।
वेलन जोड़ी आय विधाता करों ऐइ की पूजा।
रांट चलै तौ करो कीर्तन नाचों दै दै तान॥

नाम अनेक एक है ईसुर मैंनें ऐइ बिचारो।
मोरे लानें एकई जैसौं है गिरजा गुरुद्वारो।
मैंने सदा एक सी मानी गीता और कुरान॥

जो कँउ कोउ कभँऊ ललकारै तौ जौहर दिखलैंहो।
उन दुसमन खां सेर बब्वरी भगतसिंह बन जैहौं।
गेंती गन मशीन वन जैहै हांसिया वनें कृपान॥

है इतनो अरमान विधाता मोरी बात निभावै।
ई माटी के काम आय 'मायूस' धन्न हो जावै।
जान देव मैं जान देंव ना ई माटी की आन॥

—पंचायत सचिव, ईसानगर

प्राचीन बुन्देली गद्य

[बहुधा यह चर्चा चल पड़ती है कि बुन्देली गद्य नहीं के बराबर है और अनजाने ही लोगों में यह विश्वास फूट पड़ता है कि प्राचीन बुन्देली गद्य का अभाव रहा है। वैसे आकाशवाणी छतरपुर से एक वार्ता 'बुन्देली गद्य' साहित्य' शीर्षक से प्रसारित हो चुकी है, जिसमें प्राचीन गद्य की तथ्य-पूर्ण प्रामाणिक खोज को गयी है। यहां हम गद्य के विविध नमूने क्रमशः प्रकाशित कर रहे हैं विद्वानों एवं पाठकों से निवेदन है कि वे इस स्तम्भ में योगदान करें।

—सम्पादक]

सनदें एवं पत्र

●

श्रीश्री धरमपुरिप राजगुर श्रीश्रीश्री प्रानाथ सतगुर साहिव जू देव कों चढ़ायो दसौंधसिगई पाधारगु श्री महाराजाधिराज श्री महाराजा श्री राजा छत्रसाल जू देव नें परगनै सैहुंडां कस्बा सैहुड़ा के चौतरा में रुपैया १०००००१ सो हरहमेस पाअैंजांई यामै कोउ तकरार न करै हिदु वा मुसलमान अउ जे तकरार करैं ताकी लोकपरलोक नस्ट होई साहिव सो विमुष होई माह सुदि ५ संवतु १७८३ मुकाम महेवा—

●

श्री महाराजकोमार श्रीभैया पांडेराइ जू देव ऐते श्री महाराजाधिराज श्री महाराजा श्री राजा जगतराज जू देव के वाचने ऊहा के समांचार भले चाहिजें ईहां के समांचार भले हैं अार श्रीपाई किसोरजू के काम चलवाइवे बाबति आगे सनधि गई है तिहि तिहिवर हुकम ऊहां काम चलवाइ दीजो अरु ब्योपारिन पर दमरी रुपैया आगे भाई सषीदास कों लिषो गयो हैं अरु याहैं दमरी रुपैया भाई किसोर जू कों लिष्यो है सो यामैं छदाम रुपैया होतु है सो ब्यापारी रहजो जैहै अब अैसी कीजो दमरी रुपैया ब्योपारी सों दिबाइजो सो आधी कोडी किसोर जू पावै आधी कोड़ी रुपीदास पावै सांउन बदि १२ संवतु १८१३ मुकाम जैतपुर।

(श्री हजारीलाल धामी छतरपुर के सौजन्य से)

●

महांराई श्री ++++ ढांकन जू एते श्री महांराजधिराज श्रीमहांराजा श्री राजाबहादुर परतापसिंध जू एते बिजैमिरधां जोगु आपर ऊहां के समांचार

भले चाहिजै इहां के समांचार भले हैं आपर निवारीवारे श्रीकुवर सुरतसिंध जू को बा श्रीकुवर तेई सिंध जू को++ को जिमी षेत को अरझाव है ताको+ पंच उहां षोर निवारी के मैडे के चुरे हैं तिनऊ को+++वा+र जन वा जिमी समझ कें पंचन मै हो++कराअे दीजो मार्ग सुदि १ संवत १६०५ मुकाम+++।

●

हुकुम हजूर ऐते मौजे हरई के जिमीदारन जोग आपर तुम्हारो गाव श्री महाराजकोमार श्री कुवरपरतापसींध जू देव को दयो है सो इन्हैं रुजूरुजो अमल दीजो योर को देहो सो मुजरा ना पाइहो जेठ बदि ५ संवतु १८५४ मुकाम जैतपुर।

●

श्रीमहाराजकोमार श्रीभैया सूरतसीघ जू देव ऐते श्री महाराजकोमार श्रीकुवर अमानसीध जू देव के बाचनै आपर उहां के समाचार भले चाहजै इहां के समाचार भले हैं आपर इहां मैडे की विदित सब तुमारी जानी है तापै इहां जो हवाल गुजरो है सो बिसरामसीघ सब कैहै रही गाव जिमी हमारै नाही बाइ परंत बात के ठाकुर हम हमेस बनै रहे हैं तापै जो बात बनायै रहनै आवै तो जे भैया उहां है तिनको लिवाइ कै बहुत जरूर आइयो जादा का लिषै ओर ऐही तरा सब भैयन को बुलायो है सो समझ लीजो पौष बदि ४ संवतु १६०५ मु: निबारी।

●

(श्री दंगलसिंह, छतरपुर के सौजन्य से)

राजकवि मुंशी अजमेरी के नाम ओरछेश वीरसिंह जू देव का पत्र

टीकमगढ़–सी० आई०

२-७-३३

भैया अजमेरी जी,

जै राधे की

तुमाओ पत्र ता० २३ को काल संजा कें मिलो। सिकत्तर साहब कौ कसूर नैयां कै उन्नें जा लिख दई कै मैं तीर्थयात्रा कों गओ तो, काय कै उनें हिन्दी की यात्रा के लानें एकै शब्द आउत है और बौ है "तीर्थयात्रा"। बे जानत हैं कै यात्रा पूरो शब्द नैयां, 'तीर्थ' लगा दैबे सें पूरो होत। जा आय गुढ़ी हती।

सो श्यामसुन्दर दास जू परोपकार कौ मुड़ायछो बांदें फिरत? का कैये साब, बड़े परोपकारो। आल्हा की वा तुक याद आगई कै—'रैय्या जूझै पराये काज''।

मैं उनें थोरे दिनन में पत्र लिखत हों। देखें का जबाब देत।

अबै ग्लेसियर यात्रा को लेख अधूरो डरो कायसें कै इतै पोंच कें दो तीन बाद मोरी रान में एक फोरा हो आओ तो। ऊ मुतरॉयदे के मारें अबैलों ठीक तरां सें बैठ नंइं पाऊत। आसा है कै दो तीन दिना में ठीक हो जैउं।

अबै दो तीन दिनां मय बांस की दस बीस लाठियां आंइं तीं सो उनमें सें दो नबेरीं हैं। और कड़ेरे के इतै डार दई हैं। जोइ तैयार होकें आहें कै उनें स्याम-व्याम सें लैस करकें पठै देउं।

नाहर के जो दोहा बना भेजे सो भौतै नोंने बने। सबई नें पसन्द करे। धन्यवाद। इतै सब प्रकार कुसलता है। आसा है अपुन कुशल हुहो।

भवदीय हस्ताक्षर (वीरसिंह देव)

(श्री गुणसागर सत्यार्थी, टीकमगढ़ के सौजन्य से)

बुन्देली कहानी

महुवन के अंसुवा

डा० हरगोविन्द सिंह

रामबिलावन दद्दू की हंतोटी कुछू ऐसी सिद्ध हती के जोन पेड़ो उन्नें रोप दओ, ऊ फिर ठाँड़ोइ हो गओ। अनगिन्ते पेड़ दद्दू नें लगाये, पै सांचो सो उनको नाँव उजागर करो महुअन के बगैचा नें। ई बगैचा में उन्नें सत्तर पेड़े महुआ के लगाये ते। ऐसे उम्दा छटवाँ जात के पेड़े कै जिनके महुआ टटकें चोखो, तो अंगूर खें मात करें और सूके पै खाव, तो दाख-से मिठाँय और गुलगुचन की तो कहनई का है!

दद्दू के जमाने में नहर-बम्बा ना हते। बरसा नोनी हो गई तो फसल बन गई और जो कहूं बादर चुक्का दै गओ, तो बस राम-राम। दद्दू की पचासी बरस की उमर में पाँच दाईं अकाल पगे, पै उनके गाँव में कोऊ भूंकन नईं मरन पाओ। जो कुछ पुरानी बचत को नाज खोंड़न में होत तो, वे सबके लानें उधार देत ते, और जब उनको महुअन को बगैचा ठाँड़ो हो गओ, तब तो ऊ इमरतइ आय हो गयो। सबरे महुआ घर-घर बँट जात ते और आदमी डुबरी, लटा, मुरका और लरसी बना-बना कें कहतसाली काट लेत ते।

जौन दिना दद्दू ना रये, ऊ दिना सबरो गाँव गभवारे लरका की नाईं बिलख-बिलख रोओ। जिन्नें उनें दिखो तो, वे जलम भर एइ कहत रये कै दद्दू आदमी नईं देवता आयें ते।

दद्दू खें लरका तो एकइ हतो, पै तीसरी पैरी में नाती भगवान के दये दो हो गये। जिटरा भइया खें गाँवबाले दावजू कहत ते और लोहरे खें दादा। संगत-गुन समझो, चहे अपनो संस्कार, दादा को मन मेहनत-मसक्कत के काम में ना लगो। मौजे लो नहर को पानी आउन लगो तो; किसान अपनी फसलें बढ़-चढ़ कें गाहन लगे ते; देस सुतंत्र हो चुको तो; नहनो-पतरो सबइ-कोऊ अपनी उन्नती के साधन जुटाउन लगो तो। पै दादा खेंई बातन में कोऊ मत-लब ना तो। उनें तो पुरखन की जोरी, भरी-पूरी गिरतसी दिखात ती और एइ सूझत तो कि 'हँस लै रे जियरा, खेल लै रे।' चौपर बिछाकें सबेरें बैठें,

तो दिया जरें उठें और ब्यारी करकें जमें, तो मुंसारो कर देवें। आस-पास काऊँ नौटंकी होत सुन लेवें, तो आधीई राती तान देवें।

दावजू बिलात दिनन लौ चाकरन के संगे अकेलेइ जुटे खेती सम्हारत रये। पै जब उन्नें देखो कै तीन-चार मोड़ी-मोड़न को बापउ बने पै ईके कान पै ढ़ोंर नईं उन्नात, तब उनको जी कचवा उठो। एक दिना दादा सें कहनइ परो—'भइया, अब इक्काईं मो पै जो कारबार नईं झिलत। अपनो-अपनो सम्हारो।

'भइया हरो, हमनें तो मीठे-मीठे फूलन के रूप में अपने हिये को हुलास उर छाती को इमरत धरती पै बरसाओ तो। आदमी की बुद्धी नें ओखें जहर बना दओ, तो ईमें हमाव का कसूर?' महुअन के अंसुवन की अपनी कहानी, डा० हरगोविन्द सिंह की मंजी भई बोली में।—सम्पादक

दावजू जानत ते कि हीसाबाँट भये पै ईखें कुछू जाड़ों लगिहै, पै दादा खें ढकउ न भओ, उल्टे वे और सुतंत्र हो गये। पहलाँ तो कछु दावजू को संकोच हतो, पै अब उनके बैटका में मौजेइ के नईं असपेरउ के ठलुआ खुलकें जमन लगे। उनईं में सें एक हते घसीटे उस्ताज। बात में ऐसे निपुन जैसें खास बीरबल सें दच्छिया लाई होय और गावे-बजावे के ऐसे सौकीन जैसें तानसेनई की ओजी पै आए होयें। पै बिना बोतल के उनकी मसीन एक इंच न ढुलत ती। जो लौं बोतल न मिले, तो लौं भीजी लुखरिया से बैठे रयें और खुराक मिलतईं हिन्नां-से उचकन लगें।

अबै लौं गाँववाले महुवन सें भाँत-भाँत के बिजनन भर को स्वाद लेबो जानत ते; अपन खात ते और ढोर-बछेरुन खें खवा कें पुस्ट करत ते। पै घसीटे उस्ताज नें महुवन सें अपने मतलब की चीज तइयार करबे की बिधी कहुं सें खोज लईं ती। दादा को थानेदार सें ब्योहार हतो, सो उस्ताद खें पुलिस को कोउ धँदस ना रई। पैली साल जित्ती समब उतारो, बा सब मुफत पिवा-पिवा कें उस्ताज नें कई चेला बना लए।

दादा पहलइं दावजू के मसकां पीबो सीक चुके ते। पै पियत पित-पावनईं ते। अब जब माल घरई में तइयार होन लगो, तब तो उनको नित्त-नेम चालू हो गओ।

कहो गयो है कै जैसी देवी होत, तैसई धुम्मयार लगत। जब दादा के घर में बोतल-भमानी की थापना हो गई, तब दिन-पै-दिन समाजउ ओइ के माफिक जुरन लगो। जोन चौक में सावन सें कथा-बारता और ग्यान-चरचा

होत आई ती, उतै अब उचक्कयाव होंन लगो। जौन दोरौ झरो-लियो चौका ऐसो सोभा दये करत तो, ऊ अब तमाखू गुटका बालिन की बेमरजाद थुक्का-थाई के मारें बूचरखानों-सौ दिखान लगो। जौन गैलन में पैलाँ देवसरूप मानसन के दरसन होत ते, उनमें अब लाल लाल आँखिन और बड़ी-बड़ी मूँछनवाले नशैला तहमतें लगायें, बल्लमें बांधें, तिदुवा-से गँगात फिरन लगे। गरीब-गुरबन और महाजनन को तो निभाव मुसकिल हो गओ। उनकी बहू-बिटियन नें कामऊँ अटके पै बेरां कुबेरां अकेलें घर सें बाहर निकरबो और हार-खेत को जैबो बन्द कर दओ।

दावजू खें यो सब बहुतउ अखरो। उन्नें दादा खें समझाबे की भौत कोसिस करी, पै उतै ऊनत को तो? ई समै दस-पांच गाँव के भीतर दादइ छाये ते। बड़े-बड़िन सें उनको ब्योहार तो; पंचायत में बेई बुलाये जात ते। चार-पांच सौ बोटन को खत्ता उनके हांत में हतो, सो बे अब नेता सोऊ माने जात ते। दाबजू की उनके सामूँ का कीमत ती? उनको बतकाव दादा खें सिरंपना-सौ लगो। ओ हाल देखकै दावजू नें पुरानी वखरी छांड़ दई और गाँव के बायरें दुरऊ के ऐंगर नओ मकान बनवा कैं रान लगे।

जोकोऊ ई धरती पै आउत है, ओखें एक दिना लौटकैं निस्चै जानें परत। ईके बाद तो बस चरचा भर रै जात। एई सें बुद्धमानन नें कओ है कै साजो ना बनें, तो बुरओ सोऊ ना करौ। पै दादा खें ई बातें सोचबे की फुरसतइ कां ती। बे तो ओ जानत ते कै गाँव में हमाई धाक है, असपेर में नाँव है, दिन भर खूब छानबे खें मिलत; बस, और का चाइए? ईको नतीजा ओ कड़ो कै उनकी आमली में सराब पी-पी कैं सैकरन उठाईगीरा, चोर और उचक्का पैदां हो गये। खरचा पूरो करबे के लानें कछू जनें डकैतिउँ डारन लगे। उनइँ में दादा को जिठरा लरका सामिल हो गओ। जब दोउ भइया संगे हते, तब दावजू नें ओखें पढ़ाबे के बड़े उपाव करे ते, पै ओनें दरजा चार सें अँगारीं पाँव ना दओ।

समै काऊ को एक-सौ नइँ रात और जादां अती सोऊ साजी नइँ होत। एक दाइं दादा के जिठरा कुँवर डकैती डारन कऊँ लम्मे कढ़ गये। उतै अचानक रस्ता में पुलिसवारन सें मुठभेड़ हो गई और उन्हें जान सें हांत धोनें परे। तपतीस की लपेट में दादउ आये, पै कोसिस करकैं जैसें-तैसें निनुर गए।

लटका के मारे जैबे के बाद दादा के इतै खुराफातियन को जमाव तो घट गओ, पै उनको सराब पीबो सो न घटो, बलकिन कुछ बढ़ई गओ। पै अब पुलिस की निघा बदल चुकी ती। थानेदार नओ आ गओ तो ओनें एक दिना गाँव पै दबिस दई। घसीटे उस्ताज सराब उतारत पकरे गये। दादा नें थानेदार खें भौत मनाओ, बिन्ती-भान्ती करी, लोभउ दिखाओ, पै

ओनें एक ना सुनी। उस्ताज खें जेल की हवा खानें परी।

चैत को महीना उतर रओ तो। उन्हारी की फसल कटकैं खरयानन में जमा हो चली ती। रात कैं गाँव के जादांतर आदमी अपने-अपने खरयानन में सोउत ते। रात भर खुली हवा की सुरक और नांज के पके दानिन की सोंदी, सोंदी महँक जहाँ लहरियां लेत होय, उतै पाँचइ-छै घंटा की नींद में मेहनती आदमी की कचवाहट दूर हो जात।

एक दिना रात कैं हवा थम गई, सो गाँव में बिसेस गरमी जान परत ती। दादा ने ब्यारिन की बेरां तनक जादां पी लाई ती, सो उनें तो पसीना की धारें लगी तीं। सोबे के लानें वे बाहर गाँव खरयानें काये खें जाते, अपने तिखंडा पै चढ़ कैं पर रये। आधी रात के बीचां खालें उतरबे को मन करो, पै मधवाय और उसनीद के मारें जीना के धोकें पछीत कुदाइं चले गये। छत नई डरी ती, अबै पट्टी ना बन पाई ती। पाँव हूचतइँ खपरी के बल नीचें चले आये। धमाको सुनकै आदमी दौरे, पै जौलों उठाकैं भीतर ल्याए-ल्याए, तौ लौं सब खेल खतम हो गओ।

अँदयाइं महुवन के बगैचा में दद्दू के चौंतरा के ढिगें दादा की चेटका बनाई गयी। दाग दैबे की बेरां जब दादा को नौ बरस को राईभरो सिसकीं लेत पैकरमा लगाबे खें निगो, तब सबकी आँखीं छलछला उठीं। बगैचा के पेड़नउँ सें चेटका की बगल में छै-सात महुवा बड़े-बड़े अँसुवन की नाइं टप्प-टप्प चू परे।

दावजू रुँधे गरे सें बोले--'हम संगै बने राते तौ साइत इत्ती बरबादी ना होती।'

'होनी कोऊ नइँ जानत दावजू। अब तो तुमें फिर संगैई होनें परिहै। ई बारे-बारे लरकन की जिन्दगी खें अब तुमारइ छाया को सहारो है।'—कई जनें कै उठे।

दादा को एक संगी बोलो—'सबमें जादां बैगुन तो ई महुवन नें करो।'

पेड़िन सें अबउँ टप्प-टप्प अँसुवा-से गिर रये ते। उनें परमेसुर नें बक्कुर दओ होतो, तो बे इत्ती बात कै कैं अपनों जी हरओ कर लेते कै 'भइया हरो, हमनें तो मीठे-मीठे फूलन के रूप में अपने हिये को हुलास उर छाती को इमरत धरती पै बरसाओ तो। आदमी की बुद्धी नें आँखें जहर बना दओ, तो ईमें हमाव का कसूर?'

हिन्दी विभाग
ब्रह्मानन्द महाविद्यालय
राठ (हमीरपुर) उ० प्र०

बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी के ऐतिहासिक निर्णय एवं छतरपुर जनपद में जयन्ती-समारोहों के आयोजन

बुन्देलखण्ड की संस्कार धानी नगरी छतरपुर में उस समय सरस काव्य-धारा प्रवाहित हो उठी, जब ७ अगस्त, ८१ को तुलसी-जयंती समारोह का आयोजन श्री लक्षमणदास अग्रवाल धर्मशाला प्रांगण में सोल्लास सम्पन्न हुआ। समारोह की अध्यक्षता लब्ध प्रतिष्ठ कवि साहित्यकार श्री अम्बिका प्रसाद दिव्य ने की। मुख्य अतिथि के रूप में राष्ट्रीय कवि श्री कृष्ण 'सरस' और बुन्देलखण्ड के उदीयमान गीतकार श्री ओम प्रकाश बबेले उपस्थित थे। दिव्य, सरल एवं बबेले सहित नगर के लगभग सभी कवियों और शायरों ने अपनी सरस, सशक्त एवं ओजस्वी वाणी में प्रस्तुत गंगा-जमुनी काव्य-संगीता द्वारा रसज्ञ श्रोताओं को रात्रि के दो बजे तक आनंद विभोर किए रखा। गोष्ठी का सफल संचालन किया श्री निवास शुक्ल ने।

बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी के तत्वावधान में आयोजित इस समारोह में सर्वप्रथम गोस्वामी तुलसीदास के चित्र पर माल्यार्पण पूजन किया गया तथा वक्ताओं द्वारा श्रद्धाजलियाँ अर्पित की गयीं। सर्वाधिक महत्वपूर्ण और ऐतिहासिक घोषणा की गई कि प्रतिवर्ष अकादमी एक साहित्यकार का सम्मान किया करेगी। अग्रवाल धर्मशाला ट्रस्ट की ओर से भूतपूर्व आयुक्त श्री कन्हैया लाल अग्रवाल ने घोषणा की कि ट्रस्ट द्वारा प्रतिवर्ष तुलसी जयंती समारोह पर कवि-सम्मेलन और साहित्यकार के सम्मान की व्यय-व्यवस्था का दायित्व वहन किया जायगा। इस दूसरी ऐतिहासिक एवं दिशा-दर्शक घोषणा का स्वागत उपस्थित जनसमुदाय ने तालियों की भारी गड़गड़ाहट के साथ किया। अंत में अकादमी की ओर से (डॉ०) नर्मदा प्रसाद गुप्त, 'मामुलिया'-सम्पादक ने सभी के प्रति आभार व्यक्त किया।

छतरपुर जिले के विभिन्न अंचलों में भी शैक्षणिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक समस्याओं में तुलसी जयंती समारोह आयोजित किए गए। ३ अगस्त ८१ को बिजावर में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त-जयंती, हरपालपुर में ५ एवं ६ अगस्त, ८१ को क्रमशः कवि-सम्मेलन व संगीत सम्मेलन तथा ५ मई,

८१ को छतरपुर में छत्रसाल जयंती समारोह के सफल आयोजन किये गए।

जबलपुर में बुन्देली काव्य एवं विचार-गोष्ठी

बुन्देली लोकभारती, जबलपुर के तत्वावधान में आयोजित बुन्देली विचार-गोष्ठीं में विद्वान वक्ताओं ने बुन्देली भाषा एवं साहित्य की प्रगति हेतु बुन्देली को माध्यम बनाना अति आवश्यक बताया। बुन्देली के श्रेष्ठ कवियों-ईसुरी और जगनिक को हिन्दी के प्रतिष्ठित कवियों—सूर, तुलसी, बिहारी आदि की भांति सम्मानप्रद स्थान दिलाने के लिए इन बुन्देली कवियों के साहित्य के मूल्यांकन की नितांत आवश्यकता है। बुन्देली गद्य लेखन को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए और समसामयिक संदर्भों में बुन्देली को उपयोगी और विकसित किया जाना चाहिए। प्रायः सभी वक्ताओं ने बुन्देली को साहित्यिक रूप में प्रतिष्ठापित कराने हेतु वकालत की, जिनमें सर्वश्री हरिकृष्ण त्रिपाठी, डा० सुशीलचन्द्र दिवाकर, डा० पूरनचन्द्र श्रीवास्तव, गंगाप्रसाद ठाकुर, डा० कृष्णकुमार हूंका आदि विद्वाव-वक्ता शामिल थे। बुन्देली विचार-गोष्ठी की अध्यक्षता की डा० पूरनचन्द श्रीवास्तव ने और सफल संचालन डा० हूंका ने किया।

समारोह का समापन हुआ बुन्देली काव्य गोष्ठी से, जिसमें सर्वश्री डा० पूरनचन्द श्रीवास्तव, पं० दीनानाथ शुक्ल, प्रतुल श्रीवास्तव, रघुवीर प्रसाद श्रीवास्तव, द्वारिका प्रसाद अग्रवाल 'बेचैन', लीलाधर यादव, प्रेम कुशवाहा, गुप्तेश्वर द्वारिका गुप्ता, प्रभु भाई एवं राज जबलपुरी ने सुमधुर बुन्देली काव्य-पाठ प्रस्तुत किया।

महोबा (उ० प्र०) में बुन्देली फाग एवं कवि सम्मेलन

'जगनिक शोध संस्थान' महोबा द्वारा २४ एवं २५ मार्च, ८१ को कवि-सम्मेलन, बुन्देली फाग-संगोष्ठी और बुन्देली फाग-गायन-प्रतियोगिता के द्विदिवसीय साहित्यिक एवं सांस्कृतिक समारोह का सफल आयोजन संस्थान के अध्यक्ष डा० गया प्रसाद जी त्रिपाठी एवं सचिव डा० वीरेन्द्र 'निर्झर' के कुशल संचालन में सम्पन्न हुआ, जिसमें श्री जाहिर सिंह जी का जन-सहयोग तथा महाराजा महाविद्यालय, छतरपुर के प्राध्यापक-'ममुलिया'-सम्पादक डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त का मार्ग दर्शन सराहनीय रहा। इस आयोजन के दौरान सुकवि 'मंजुल मयंक' का अभिनन्दन किया गया। बुन्देली फाग संगोष्ठी में शोधपूर्ण निबंधों का विद्वानों द्वारा पाठ किया गया और अगले वर्ष से फाग गायन-प्रतियोगिता में विजयी दल को 'चल-वैजयंती' से पुरस्कृत किए जाने का निर्णय किया गया।